युरोप में आजाद हिन्द

युरोप में कायम की गई आजाद हिन्द सरकार तथा फौज का पूरा विवरण और वहां स्वदेश की आजादी के लिये किये गये प्रयत्नों का पूरा इतिहास

भूमिका :—
आचार्य नरेन्द्रदेवजी

लेखक :—
श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार
सरदार रामसिंह रावल

मूल्य २) 2/50

मारवाड़ी पब्लिकेशन्स,
४० ए, हनुमान रोड
नई दिल्ली।

विक्रेता—
मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
४० ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली।

मूल्य २)
डाक या वी० पी० से २।-)
फरवरी १९४७.

प्रकाशकः—
विश्ववाणी कार्यालय
साउथ मलाका, इलाहाबाद,

मुद्रक—
धारा प्रेस,
दिल्ली



स्वदेश से दूर विदेशों में मातृभूमि के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले वीरों की यह वीर गाथा युरोप में आजाद हिन्द फौज के सब से पहले शहीद उस वीर गुरखा फौजी श्याम बहादुर थापा की पुण्य स्मृति में प्रकाशित की गई है, जिसने जर्मनी में खूनिग्सबुर्ग के कैम्प-अस्पताल में नेताजी की गोद में वीरगति को प्राप्त किया था। उस वीर को अपनी जान पर खेल जाने वालों की यह वीर गाथा समर्पित हैं।

दो शब्द

अपने देशमे महान् क्रांति को सम्पन्न करने के लिए गत महायुद्ध के दिनों में इतिहास ने श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस और श्री जयप्रकाश-नारायण को अपना उपकरण बनाया था। इन्हीं दो महान् व्यक्तियों के सिर पर इतिहास ने इन दिनों में अपना वरद हस्त रखा। देश के बाहर क्रान्ति की तैयारी करने का काम श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस ने सम्पन्न किया। उनकी मनोवृत्ति सदा ही क्रांतिकारी रही। वे अत्यन्त साहसी, तेजस्वी और अध्यवसायी थे। फासिस्ट शक्तियों से स्वदेश के उद्धार के कार्य में सहायता लेना खतरनाक काम था। इस सम्बन्ध में दो मत हैं कि यह कार्य उचित था कि नहीं? बर्मा, सिंगापुर-मलाया अथवा पूर्वीय एशिया में हुई आजाद हिन्द क्रान्ति के सगठन का इतिहास हमको विस्तृत रूप से मालुम हो चुका है, किन्तु युरोप में इस दिशा में सुभाष बाबू ने जो कार्य किया था, उसका इतिहास हमको बहुत कम मालूम था। प्रस्तुत पुस्तक में वह इतिहास विस्तार के साथ पहिली ही बार दिया गया है।

यह विवरण बहुत रोचक ढंग से लिखा गया है। युरोप मे हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों ने पहिले महायुद्ध के दिनों में जो काम किया था, उसका इतिहास भी प्रस्तुत पुस्तक में संक्षेप में दे दिया गया है। पुस्तक में दिये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि सुभाष बाबू ने सदा इस बात को एहतियात रखी थी कि आजाद हिन्द फौज फासिस्ट शक्तियों के आधीन न हो। वह एक सर्वथा स्वतन्त्र संस्था या सगठन रहे। यह बात बार बार स्पष्ट कर दी गई थी कि उसका एकमात्र उद्देश्य हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करना हैं, न कि फासिस्ट शक्तियों की सहायता करना। जो लोग फौज में भरती होते थे, उनका यह बात

माफ कर दी जाती थी। ऐसे अवसर भी आये, जब युरोप की लड़ाई में आजाद हिन्द फौज का इटली ने उपयोग करना चाहा, किन्तु सुभाष बाबू ने इसे होने न दिया।

इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजाद हिन्द फौज का संगठन करने वाले इस खतरे को अच्छी तरह समझते थे और उन्होंने इस खतरे से बचने के लिए पूरी एहतियात बरती। इसलिए जो लोग सुभाष बाबू को फासिस्ट पक्ष के समर्थन करने का दोषी ठहराते हैं, वे भूल करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जिस मार्ग के वे पथिक हुए, उसमें खतरे बहुत थे। लेकिन, हमें यह याद रखना चाहिए कि पहिले वे सोवियत रूस से सहायता लेना चाहते थे। जब वे उसमें सफल न हुए और उधर से निराश हो गए, तब उन्होंने फासिस्ट राष्ट्रों से मदद मांगी और तब भी वे सदा इस बात का प्रयत्न करते रहे कि वे राष्ट्र उनके संगठन और सेना का अपने लाभ के लिये उपयोग न करने पावें।

महायुद्ध के बाद के इतिहास ने गत महायुद्ध के स्वरूप पर अच्छी तरह प्रकाश डाल दिया है। अब इस विषय में शंका नहीं रह गई है कि गत महायुद्ध साम्राज्यवादी युद्ध था। इस दृष्टि से भी यदि हम विचार करें, तो सुभाष बाबू का कार्य सर्वथा निर्दोष सिद्ध होगा।

लेखक महोदय ने बड़े परिश्रम से इस इतिहास का संग्रह किया है। लेखनशैली बड़ी रोचक है और पुस्तक के पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

आशा है अगस्त-क्रान्ति के इतिहास के इस अध्याय का यह विवरण पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा।

नई दिल्ली,
५ फरवरी १९४७.

—नरेन्द्रदेव

जयहिन्द

"आजाद हिन्द क्रान्ति" को हिन्दी साहित्य में अमर बनाने का श्रेय सम्पादन करने वाले "मारवाड़ी प्रकाशन" का अर्थ है "क्रान्तिकारी प्रकाशन।" १९४६ के जनवरी मास में जिस 'जयहिन्द' पुस्तक से इसका सूत्रपात किया गया था, वह दस ही दिनों में सरकारी प्रकोप का शिकार होकर जब्त की जाने वाली आजाद हिन्द के सम्बन्ध में प्रकाशित की गई पहिली पुस्तक थी। लेकिन, "आजाद हिन्द क्रान्ति" के इतिहास को आम लोगों के सामने पेश करने के हमारे संकल्प में इससे कुछ भी कमी न आई। हमने यह समझा कि हमें अपने शुभ संकल्प का समुचित पुरस्कार मिल गया। 'नेताजी जियाउद्दीन के रूप में', 'लाल किले में', 'टोकियो से इम्फाल', 'राजा महेन्द्रप्रताप' और 'आजाद हिन्द के गीत' पुस्तकों का प्रकाशन कर हमने उस सिलसिले को निरन्तर जारी रखा। इस महान क्रान्ति के दो भाग हैं। एक का सम्बन्ध है पूर्वीय एशिया से और दूसरे का है युरोप से। हमारे देश के महान क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने स्वदेश से मौलवी और पठान के वेश में काबुल और वहां से इटालियन के वेश में जर्मनी पहुंच कर "आजाद हिन्द क्रान्ति" का युरोप में सूत्रपात किया था। वहां से आप पूर्वीय एशिया गये, जहां कि आपके यशस्वी नेतृत्व में इस क्रान्ति ने

विराट रूप धारण कर आजादी की प्रचण्ड लड़ाई की वह भीषण आग सुलगा दी, जिसमें पूर्वीय एशिया में जापानियों द्वारा बनाये गये युद्ध-बन्दी हिन्दुस्तानी फौजियों के साथ-साथ वहां रहने वाले गरीब-अमीर, बाल-वृद्ध, सभी हिन्दुस्तानी नागरिकों ने भी अपना तन-मन-धन सर्वस्व होम दिया था। पूर्वीय एशिया में हुए इस महान अनुष्ठान पर प्रायः सभी भाषाओं में छोटी-बड़ी दर्जनों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। निस्संदेह, उनमें से अधिकांश नितान्त गैरजिम्मेदारी से केवल अखबारों की कतरनों से इकट्ठी की गई सामग्री के आधार पर, उन कतरनों से कुछ भी अधिक जानकारी न रखते हुए और साहित्य के बाजार में भी 'चोर बाजार' करने के इरादे से लिखी गई हैं। "आजाद हिन्द क्रान्ति' में अपने को खपा देने वाले अधिकारी लोगों ने बहुत ही कम साहित्य लिखने का साहस किया है। युरोप से सम्बन्ध रखने वाली "आजाद हिन्द क्रान्ति" के बारे में तो कुछ भी लिखा नहीं गया। उसमें प्रमुख भाग लेने वाले देशभक्तों को इतना भयानक समझा गया कि उनको स्वदेश लौटने के अवसर भी कहीं अब दिया जा रहा है। सम्भवतः यही कारण है कि 'आजाद हिन्द क्रान्ति' के सिलसिले में पश्चिम में घटी घटनाओं की जानकारी आम लोगों को कुछ भी मिल नहीं सकी।

महान क्रांति के इस अज्ञात अध्याय को लिखने और प्रकाशित करने की हमारी देर से प्रबल इच्छा और आकांक्षा थी। हम सोचते थे कि एक ओर 'जयहिंद', 'लाल किले में', तथा 'नेताजी जियाउद्दीन के रूप में' और दूसरी ओर 'टोकियो से इम्फाल' तथा 'राजा महेन्द्रप्रताप' के बीच में युरोप के इतिहास की जो कड़ी छूट गई है, उसको भी किसी प्रकार पूरा कर दिया जाय। 'टोकियो से इम्फाल' और 'राजा महेंद्रप्रताप'

पुस्तकों के सुयोग्य लेखक, आजाद हिंद सरकार के पब्लिसिटी और प्रोपागेण्डा विभाग के सेक्रेटरी, 'आजाद हिंद' दैनिक (बैंकोक) के सम्पादक, स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस के प्राइवेट सेक्रेटरी और नेताजी के परम विश्वासपात्र सरदार रामसिंहजी रावल से हमने इस कमी को पूरा करने का अनुरोध किया। किसी एक स्रोत से सारी सामग्री मिलनी सम्भव न थी। हमने बहादुरगढ़ कैम्प तथा अन्य स्थानों से रिहा किये गये उन फौजी साथियों से सामग्री जुटाने का विचार किया, जो युरोप में 'आजाद हिंदुस्तान लश्कर' और आजाद हिंद फौज' में शामिल थे। नाभा राज्य का कनीनामण्डी के श्री गणेशी-लाल यादव और उनके साथी, मेरठ जिले के सुरजापुर गांव के सरदार बेनीसिंह भी उन्हीं में से थे। उनके साथ सीधा सम्बन्ध कायम करने में तीन मास बीत गये। एक दिन अचानक दोनों रात के समय हमारे यहां आ पहुंचे। आप दोनों से तथा कुछ अन्य फौजियों से इकट्ठी की गई सामग्री और जानकारी के आधार पर यह पुस्तक तय्यार की जा सकी है।

श्री गणेशीलाल यादव और सरदार बेनीसिंह दोनों १९४०-४१ में फौज में भरती हुए थे। ट्रेनिंग के बाद आप दोनों को उत्तरी अफ्रीका में लीबिया के रणक्षेत्र पर उस रेजीमेण्ट के साथ भेजा गया, जिसका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। जर्मनों द्वारा गिरफ्तार किये जाने के बाद दोनों इटली भेजे गए। वहां आप दोनों सरदार अजीतसिंह और श्री इकबाल शैदाई के "आजाद हिन्दुस्तान लश्कर" में भरती हो गये। इस लश्कर के भंग किये जाने पर दोनों जर्मनी जाकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की "फ्राइज इण्डीन लिजों" में भरती हुये। युरोप

में 'लिजों' द्वारा प्रचार तथा आन्दोलन के लिये किये गए दौरों में दोनों ने विशेष भाग लिया। अप्रैल १९४५ में जर्मनी की पराजय होने पर अपने अनेक साथियों के साथ दोनों हंगरी भाग गये। सोवियत फौजों ने दोनो को गिरफ्तार किया। वियाना में दोनों को अंग्रेजों के हाथों में सौंप दिया गया। वहां से इंग्लैंड लाया गया और इंग्लैंड से हिन्दुस्तान लाकर बहादुरगढ़ के नारकीय कैम्प में रखा गया। यहां आप दोनों को जिन जोर-जुल्मों और ज्यादतियों को झेलना पड़ा, उनका विस्तृत वर्णन पुस्तक में यथास्थान दिया गया है। ८ मास तक इन अमानुष यातनाओं को भोगने के बाद आप दोनों ने अपने को देशसेवा के ही काम में लगाया हुआ है। हिन्दुस्तान सेवा दल का संगठन करने और मेरठ में कांग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाने में आप दोनों ने कई मास का समय लगा दिया। नाभा राज्य प्रजा मण्डल की कनीना शाखा के श्री गणेशीलाल मन्त्री हैं। नेताजी ने आप दोनों के हृदय में आजाद हिन्द की जो भावना भरी थी और उनसे आपने देशसेवा की जो दीक्षा ली थी, उनसे प्रेरित होकर आपने घर-गृहस्थी की आर्थिक तंगियों से घिर जाने पर भी अपने को सार्वजनिक राष्ट्रीय कार्यों में लगाया हुआ है।

यह पुस्तक एक प्रकार से आप दोनों की आपबीती जीवनी के आधार पर ही लिखी गई है। आप दोनों के बहुमूल्य सहयोग के बिना आजाद हिन्द क्रान्ति का यह अध्याय लिखे बिना ही रह जाता। इसको लिखने और आजाद हिन्द क्रान्ति के इतिहास की शृंखला को पूरा करने का इस प्रकार हमें जो अवसर मिला है, उसके लिये भाई रामसिंह रावल और मैं दोनों ही आप दोनों के हृदय से आभारी हैं।

आदरणीय आचार्य श्री नरेन्द्र देव जी ने इस पुस्तक की भूमिका के लिये दो शब्द लिख देने और इसको सराह कर हमारे उत्साह को बढ़ाने की जो सहज कृपा की है, उसके लिये हम आपके अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

इसको लिखने, प्रकाशित करने और राष्ट्र प्रेमी जनता के हाथों में पहुंचाने में, यत्न करने पर भी, कुछ अधिक समय लग ही गया। फिर भी हम इसको अपनी इच्छा के अनुसार अधिक सुन्दर और आकर्षक नहीं बना सके हैं। लेकिन, इसको उपयोगी बनाने और कुछ सर्वथा दुर्लभ चित्रों से सजाने का हमने प्रयत्न किया है। हमें पूरा विश्वास है कि हमारे पहिले प्रकाशनों के समान इसको भी अपना कर हिन्दी जगत् हमें कृतार्थ करेगा।

—सत्यदेव विद्यालंकार

"स्वतन्त्रता दिवस"
२६ जनवरी ४७
४० ए. हनुमान रोड,
नई दिल्ली।

एक नजर में

चित्र



नेताजी (बर्लिन में)

१

युरोप में क्रान्तिकारी हिन्दुस्तानी

हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज की जड़ें १७५७ में प्लासी की लड़ाई में रोपी गईं थीं और कुछ ही वर्षों में ये सारे देश में फैल गईं। १८५७ में उनको उखाड़ फेंकने के दृढ संकल्प से जो आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी, उसका अन्त दुःखान्त नाटक के रूप में हुआ। अपने ही भाइयों और साथियों के द्रोह और विश्वासघात का परिणाम यह हुआ कि विदेशी हुकूमत की जड़ें और भी मजबूती के साथ जम गईं। सारे देश पर इंगलैंड का यूनियन जैक बे रोक-टोक फहराने लग गया स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान की भावनाओं को धीरे धीरे जड़-मूल से नष्ट कर दिया गया। शस्त्र-कानून की आड़ में क्षात्र भावना का गला घोंट कर देशवासियों को नितान्त 'अपाहज' या नपुंसक बना दिया गया और अंग्रेज शासकों ने यह समझ लिया कि इस देश में आजादी की भावना कभी भी पनप न सकेगी और उनकी हकूमत के लिये कभी कोई संकट पैदा ही न होगा। लेकिन, घोर दमन के साथ अपनाई गई दुर्नीति की राखके तले आजादी की भावना की चिनगारियां

धधक रहीं थीं और जहां-तहां जब-तब उनमें कुछ लपटें भी सुलग जाया करती थीं। खूनी क्रान्ति की लाल लपटों के साथ रचा गया। पिछली सदी का लम्बा इतिहास इसका साक्षी है कि आजादी की आग को इन सारे प्रयत्नों से भी बुझाया नहीं जा सका। १९४२ में हुई प्रचण्ड अगस्त-क्रान्ति का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस की स्थापना में जिन कूट-नीतिक अंग्रेजों का हाथ था, उनकी मंशा यह थी कि हिन्दुस्तान में १८५७ की पुनरावृत्ति न हो। अंग्रेजी हकूमत के प्रति हिन्दुस्तानियों के गहरे असंतोष को विधानवाद की सीमा में बांध कर विप्लव या विद्रोह की समस्त संभावनाओं को वेअसंभव बना देना चाहते थे। लेकिन, उन्हें क्या पता था कि समुद्र की लहरों को बालू के बांध से बांधा नहीं जा सकता। १९०७ में, १९१६ में और १९१९ में पैदा हुई विप्लव की प्रचण्ड भावना को जैसे कुचला गया, वैसे ही असन्तोष की आग में निरन्तर घी की आहुति पड़ती चली गई। पंजाब की फौजी हकूमत की आड़में अपनाया गया दमन दुर्नीतिकी पराकाष्ठा को पहुंच गया और जलि-यांवालाबाग में रचा गया नरमेध-यज्ञ सारे देश में असन्तोष पैदा करने का कारण बन गया। उसी असन्तोष के गर्भ में अहिंसात्मक असह-योग और सत्याग्रह का जन्म होकर स्वराज्य की अदम्य भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

१९२० में शुरु हुई इस लड़ाई का आधार सत्य, अहिंसा और आत्म बलिदान होने पर भी खूनी क्रान्ति की लाल लपटें भीतर ही भीतर सुलगती रहीं और वे अपना काम भी निरंतर करती रहीं। देश की आजादी के लिये इस प्रकार दुमुखी लड़ाई लड़ी जाती रही। महात्मा गान्धी और कांग्रेस द्वारा सत्य, अहिंसा और बलिदान के अपनाये जाने

पर इतना अधिक जोर देने का ही यह परिणाम था कि देश में हिंसात्मक क्रांति ने जड़ नहीं पकड़ा। फिर भी गुलामी से मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा, आजाद होने की अदम्य भावना और क्रान्ति की वेगवती लहर देशमें चारों ओर व्याप्त गई। सर हथेली पर रख कर जान पर खेल जाने वाली उतावली युवा-वृत्ति ने जब भी कभी विराट् रूप धारण किया, तब सदा ही बम-विस्फोट तथा गोली-कांड, हत्या-कांड आदि के रूप में विदेशी हकूमत को चेतावनी और साथ ही चुनौती भी दी जाती रही। दूसरे देशों में इतिहास के वे पन्ने उनके सामने थे, जिनमें जनता का दमन, उत्पीड़न और शोषण करने वाली हकूमतों के कामयाबी के साथ पलटने की कहानी गर्व और गौरव के साथ सुनहरी अक्षरों में लिखी गई है। अपने देस की आजादी के इतिहास को भी उन्हीं सुनहरी अक्षरों में लिखने के लिये देश के वे युवक उतावले हुए फिरते थे। प्रगट में अपना काम करना उनके लिये संभव न था। अपना देशव्यापी संगठन बनानेमें सफल न होसके। अपने हर प्रयोगके लिये उनको महंगीसे महंगी कीमत चुकानी पड़ती थी। इन प्रयोगों के कारण हुये लम्बे कारावास, कालेपानी, फांसी और निर्वासन आदि की रोमांचकारी कहानी जब कभी लिखी जा सकेगी, तब उनकी कीमत को आंका जा सकेगा। उनमें से बहुतों के लिए स्वदेश में रहना मुश्किल होगया। सर्वशक्तिसम्पन्न ब्रिटिश हकूमत की ब्रह्मा-विष्णु-महेश की सी सामर्थ्य रखने वाली पुलिस मौत की छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। उसकी आंखों में धूल झोंक कर उनमें से अनेक शूरमा देश-भक्त अंग्रेजी राजकी चहारदिवारी पार कर विदेशों को उड़ गये। कुछ वर्मा से पूर्व की ओर और यूराप की ओर चले गये। उनमें पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

श्री रासबिहारी बोस, लाला हरदयाल, राजा महेन्द्रप्रताप, मौलाना बरकत उल्ला, मौलाना ओबिदुल्ला सिन्धी, मौलाना इमामुल हिन्द श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा, डाक्टर कर्तारामम, सरदार अजीतसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उनके और भी अनेक साथी थे। श्री रासबिहारी बोस १९०७ में ही क्रांतिकारी प्रवृत्तियों में लग गये थे। बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, दिल्ली और पंजाब में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को पैदा कर उनको संगठित करने में अपने को आपने लगा दिया। तब बड़े से बड़े संकट की भी आपने परवा नहीं की। दिल्ली में वायसराय पर फेंके गये बम की घटना को लेकर आपकी गिरफ्तारी के लिए एक लाख रुपये तक का इनाम रखा गया था। १९१४ के महायुद्ध के दिनों में २१ फरवरी १९१४ को आपने उत्तरीय हिन्दुस्तान की समस्त छावनियों में विद्रोह का शंख फूंक कर १८५७ की-सी प्रचण्ड क्रांति पैदा करने का षडयंत्र रच लिया था। लेकिन, १९१५ में आपको स्वदेश छोड़ने को लाचार होना पड़ा। दूसरे महायुद्ध के दिनों १९४२-४३ में आपने अपनी पुरानी क्रांति-री भावनाओं की पूर्तिके लिए एक बार फिर प्रयत्न किया। आपके प्रयत्नों की भूमिका को लेकर ही नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द के रूप में पूर्वीय एशिया में प्रचण्ड क्रांति का बिगुल बजाया था। नेताजी भी विदेशों को भाग जाने वाले शूरमा लोगों में से ही एक और अन्यतम देशभक्त थे।

फ्रांस के लफयाते, इटली के गैरीबाल्डी, रूस के लैनिन व ट्राटस्की, फिलिपाइन्स के उगीनाल्डी और तुर्की के अतातुर्क सरीखे देशभक्तों की तरह इन देशभक्तों की भी यह दृढ़ और स्थिर भावना थी कि विदेशों में रहकर स्वदेश की आजादी के लिए न केवल प्रचार

एवं आन्दोलन किया जाय, बल्कि कुछ सक्रिय प्रयत्न भी किया जाय और संभव हो तो अच्छी बड़ी सेना खड़ी करके विदेशी हकूमत पर हमला भी किया जाय। उनमें ऐसे लोग भी शामिल थे, जो यूरोप तथा अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों पर शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय तथा अन्य कार्यों के लिए गए हुए थे किन्तु वहां की आजादी की भावना से वे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने भी स्वदेश की आजादी के लिए कुछ कुछ करने की ठान ली। यूरोप में गए हुए ऐसे लोगों में श्री ए० सी० एन० नम्बियार, श्री एम० वी० राव, श्री इकबाल शैदाई और डाक्टर कर्त्तारास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पहिले महायुद्ध के दिनों में राजा महेन्द्रप्रताप, लाला हरदयाल, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, मौलाना बरकत उल्ला ने युरोप अमेरिका में रहते हुए इस दिशा में विशेष प्रयत्न किये थे। कैलिफोर्निया की गदर पार्टी के इस दिशा में किए गये प्रयत्नों का इतिहास एक स्वतन्त्र पुस्तक का ही विषय है। राजा महेन्द्रप्रताप ने अपने साथियो के साथ जर्मनी के कैसर तथा अन्य देशों के शासकों के साथ मुलाकातें कीं। यूरोप और एशिया के कोने कोने में चक्कर काटे। जहां भी कहीं आशा की किरण दीख पड़ी, वहां दौड़े गए। अन्त में अफगानिस्तान में आजाद हिन्द सरकार की स्थापना करके छः हजार की फौज खड़ी की और हिन्दुस्तान पर हमला भी किया। लेकिन, ये प्रयत्न सफल न हुए और न कोई प्रभावशाली संगठन ही खड़ा किया जा सका। अफगानिस्तान तथा उसके आसपास के देशों में हिन्दुस्तानियोंकी संख्या इतनी कम थी कि कोई बड़ा प्रभावशाली काम कामयाबी के साथ कर सकना मुमकिन न था।

यूरोप में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का श्रीगणेश तो बीसवीं सदी के शुरू में ही हो गया था। उनको शुरू करने का श्रेय स्वर्गीय श्री श्यामकृष्णजी वर्मा को दिया जाना चाहिए। आपने इंग्लैंड में "इण्डिया हाउस" की स्थापना की थी और वहां से "इण्डियन सोशयलिस्ट" पत्र भी प्रकाशित किया था। "इण्डिया हाउस" क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का केन्द्र और "इंडियनसोशयलिस्ट" उन प्रवृत्तियों में लगे हुए लोगों का मुख पत्र बन गया। इङ्गलैंड मे पढ़ने के लिए जाने वाले हिन्दुस्तानी प्रायः उनके सम्पर्क में आते थे और उनसे प्रभावित हुए बिना न रहते थे। श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा अनेक विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां भी दिया करते थे और जिनको कहीं आश्रय न मिलता था, उनके लिये "इंडिया हाउस" का दरवाजा सदा ही खुला रहता था। पत्र के विरुद्ध दो बार मुकदमे चलाये जाने की वजह से उसका प्रकाशन पेरिस से किया जाने लगा। १६०८ में "इण्डिया हाउस" में १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई। बम बनाने और रिवाल्वर चलाने का वहां अभ्यास किया जाने लगा। सर कर्जन वायली पर भरी सभा में अमृतसर के युवक श्री मदनलाल धींगड़ा ने गोली चलाई और १६ अगस्त १६०६ को वे 'वन्देमातरम्' के जयघोष के साथ हसते हुए फांसी पर झूल गये। शहीद श्री धींगड़ा की निन्दा के लिए की गई सभा में उसका समर्थन करने वाले और आयु का श्रेष्ठ भाग कालेपानी और नजरबन्दी में पूरा करने वाले वीरवर श्री विनायक दामोदर सावरकर को क्रान्तिकारी रंग में रंग देने का श्रेय "इण्डिया हाउस" को ही है। सावरकरजी ने 'तलवार' नाम का पत्र भी निकाला। इङ्गलैंडमें क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का पनपना संभव न देखकर श्रीश्यामजी-

कृष्ण वर्मा पेरिस चले आये और "इण्डिया हाउस" का सदर मुकाम भी पेरिस चला आया। इसके बाद फ्रांस, स्विटजरलैण्ड तथा युरोप के अन्य देशों में बतौर शरणार्थी के हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी रहने लगे। वीर सावरकर इंग्लैण्डमें १६१० में गिरफ्तार किए जाकर जब हिन्दुस्तान लाये जा रहे थे, तब मार्सलीज के पास जहाज से समुद्र में कूदकर आपने फ्रांस की भूमि में पहुंच जाने का यत्न किया, किन्तु सफल न हुए। लाला हरदयाल एम०ए० भी अमेरिका में २५-२६ मार्च १६१४ को गिरफ्तार किये जानेके बाद जब रिहा किये गये, तब स्विटजरलैण्ड चले आये। जर्मनी में भी कुछ लोग पहुंचे। १६१४ में पहिले महायुद्ध का सूत्रपात होने पर यूरोप में फैले हुए क्रान्तिकारियों को वह अवसर हाथ लगा, जिसकी वे प्रतीक्षा में थे। लेकिन वे कोई विशेष काम न कर सके। महायुद्ध के बाद रूस और तुर्की में हुई क्रान्तियों से हिन्दुस्तानी युवकों को विशेष प्रेरणा मिली। सोवियत्त क्रान्ति की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। अनेक युवक उससेआकर्षित होकर विद्याध्ययन के बहाने रूस भी पहुंचे।

जर्मनी में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का केन्द्र कायम करने का श्रेय श्रीए० सी० एन० नम्बियार को है। आप भारतकोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडु के बहनोई हैं। विद्याध्ययन के लिए आप १६१६ में यूरोप गये थे। लन्दन में विद्याभ्यास का समय समाप्त करके आप युरोप आ गये और राजनीति में कूद पड़े। तब से आप युरोप में ही है। आप कम्यूनिस्ट विचारों के थे। आप मास्को भी गए थे। बर्लिन में आपने इन्फरमेशन ब्यूरो कायम किया और वहीं से हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में प्रचार एवं आन्दोलन का काम आपने शुरू किया। हर

अडोल्फ हिटलर के अधिकारारूढ़ होने पर सन १६३४ तक यह केन्द्र कायम रहा और काम करता रहता। आपको तब गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया गया। आस्ट्रिया के जर्मनी में मिलाये जाने के समय तक आप प्राग में रहे।

दूसरा केन्द्र मौलाना बरकतुल्ला ने १६१० के लगभग कायम किया था। आपने पेरिस से एक साप्ताहिक पत्र भी निकालना शुरु किया, जो बाद में जर्मनी से निकाला गया। जर्मनी में ही आपका सन १६२७ में देहांत हो गया।

श्री शाह नाम के एक गुजराती सज्जन भी उस समय युरोप में थे। आप राजा महेन्द्रप्रताप के साथी थे। पहिले तो आप हालैण्ड में रहे। बाद में पेरिस आ गए। आप सम्पन्न व्यक्ति थे। वीर सावरकर की पुस्तक "भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम युद्ध" के प्रकाशन का खर्च आपने ही दिया था और आप क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में भी खुले हाथ से मदद किया करते थे।

इङ्गलैन्ड के सिवाय सारे योरुप में हिन्दुस्तानियों की संख्या बहुत ही थोड़ी थी। दूसरे महायुद्ध से पहिले १६३६ में इनकी संख्या मुश्किल से एक हजार होगी। अधिकतर उनमें विद्यार्थी थे। कुछ व्यापारी भी थे, जो प्रायः जवाहरात का धंधा करते थे और हालैंड तथा बेल्जियम में ही रहते थे। कुछ पत्रकार थे, अथवा ऐसे ही अन्य साहसपूर्ण कार्यों में लगे हुये थे। यूरोप में उनकी कुछ संस्थायें और संगठन भी थे। पेरिस में कायम किया गया "इंडियन ऐसोसियेशन" इनमें मुख्य था। इंग्लैंड में रहने वाले हिंदुस्तानियों की संख्या जरूर दो हजार के ऊपर थी। वहां "इंडिया लीग" नाम की संस्था बहुत



इटली में "आजाद हिन्दुस्तानलश्कर" की स्थापना करने वाले और विदेशों में स्वदेश की आजादी की धुन में चालीस वर्ष खपा देने वाले सरदार अजीतसिंह ।

अच्छी और सुसंगठित थी। विद्यार्थियों की "यूनिवर्सिटी मजलिस" वहां की बहुत पुरानी संस्था है, जिसमें प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी शामिल हैं। सारे युरोप के हिंदुस्तानियों की एक केंद्रीय संस्था बनाने का भी उद्योग किया गया था। लेकिन, वह सफल न हो सका। युरोप में रहने वाले हिंदुस्तानियों में परस्पर कुछ मतभेद भी जरूर था। लेकिन, वह साम्प्रदायिक धार्मिक या सामाजिक न होकर विशुद्ध राजनीतिक था। कुछ पक्के समाजवादी थे, तो कुछ पक्के राष्ट्रवादी।

शहीद श्री भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह हिन्दुस्तान से भाग निकलने के बाद से ब्राजील में जीवन बिता रहे थे। १६३८ के मध्य में आप फ्रांस आ गए थे। उन्हीं दिनों में इंग्लैण्ड के बादशाह अपनी बेगम के साथ फ्रांस का दौरा करने आये थे। ब्रिटिश स्काटलैंड यार्ड को आशंका हुई कि कहीं उनके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र तो नहीं रचा जा रहा है। पेरिस में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को तंग किया गया और कुछ की तलाशी भी ली गई। सरदार अजीतसिंह को पेरिस छोड़ने के लिये लाचार किया गया। आप इटली चले गये और वहां ही रहने लग गये। इटली की सरकार ने आपका स्वागत किया और आपको अपने यहां पनाह दी। आपके ही सुझाव पर रोम रेडियो से हिन्दुस्तानी प्रोग्राम शुरू किया गया था और आपको उसका चार्ज दिया गया था। युद्ध के दिनों में उस बारी रेडियो स्टेशन से भी आप ब्राडकास्ट करने लग गये थे, जिसका नाम अबीसिनिया की लड़ाई में काफी मशहूर हो चुका था। इसी रेडियो स्टेशन का नाम सरदार साहब ने "आजाद हिन्दुस्तान रेडियो" रख दिया था।

कोमागाता मारू के बाबा लाभसिंहजी सरदारजी के साथी थे और आपके साथ ही इटली में रहते थे।

इटली के युद्ध में कूदने से उसकी लपटें यूरोप से उत्तरी अफ्रीका में फैल गईं और बाद में जर्मन सेना को भी इटालियन सेनाओं की सहायता के लिये वहाँ जाना पड़ गया। जर्मन सेनाओं के सामने मित्र-सेनायें टिक न सकीं और उनको सहस्रों की संख्या में आत्म-समर्पण करने को लाचार होना पड़ा। इसमें अधिक संख्या हिन्दुस्तानी सिपाहियों की थी। सरदार अजीतसिंह, श्री इकबाल शैदाई, बाबा लाभसिंह तथा उनके साथियों ने युद्ध से पैदा हुई इस परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया। युद्ध-बन्दी हिन्दुस्तानियों में प्रचार करने के लिये एक योजना बनाई गई और युरोप में आजाद हिन्द सरकार के खड़ा करने का निश्चय किया गया।

गत महायुद्ध के दिनों में युरोप में इस प्रकार हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। बाद में इसको महान क्रान्तिकारी और शक्तिशाली नेता सुभाषचन्द्र बोस का नेतृत्व प्राप्त हुआ। आपने भी जर्मनी पहुंचने के बाद आजाद हिन्द संघकी नींव डाल कर इस आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया था।

२

अंग्रेजी फौज का आत्मसमर्पण

२ सितम्बर १६३६ को शुरु हुआ युरोप का दूसरा महायुद्ध फ्रांस के पतन के समय तक केवल युरोप तक ही सीमित था। फ्रांस के पतन के दो ही सप्ताह पहिले ११ जून १६४० को इटली ने इंगलैण्ड और फ्रांस के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करके उसकी भीषणता को चरम सीमा पर पहुंचा दिया था। ट्रिपोली पर इटली की आंखें बहुत पुराने समय से लगी हुई थीं। उस आकांक्षा की पूर्ति की लालसा से इटली ने उत्तरी अफ्रीका पर आक्रमण कर दिया। इथोपिया और इटालियन सोमालीलैंड पर से इटालियन सेनाओं ने ब्रिटिश केनिया और ब्रिटिश सोमालीलैंड पर एकाएक हमला बोल दिया। १५ जुलाई १६४० को ब्रिटिश केनिया को मोयले और ६ अगस्त को ब्रिटिश सोमालीलैंड पर इन्होंने अधिकार जमा लिया। अंग्रेजों के लिये एक नयी मुसीबत खड़ी हो गई। उसका सामना करने के लिये हिन्दुस्तानी फौजों को उत्तरी अफ्रीका पहुंचाया जाने लगा। मिश्र आखिर तक तटस्थ बना रहा। इसलिये उसके या सहारे यह लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। १४ सितम्बर १६४० को पहिली हिन्दुस्तानी फौज मिश्र पहुंची। लगभग

तीन मास तक मिश्र में फौज और युद्ध-सामग्री जुटाने के बाद मध्य पूर्व की अंग्रेज फौजों के कमाण्डर-इन-चीफ जनरल आर्चिबाल्ड वावेल ने, जो बाद में सिंगापुर भेजे गये तथा 'फील्ड मार्शल' बनाये गये और जो अब हिन्दुस्तान के वायसराय हैं, सिरेनायका में आक्रमणात्मक लड़ाई का बिगुल बजाया। १६ दिसम्बर को चौथी हिन्दुस्तानी डिवीजन ने सिदी बैरानी पर कब्जा कर लिया। २२ जनवरी १९४१ को तोब्रुक पर अधिकार जमा लिया। ५ फरवरी को अगोरडार और बाद में अल अघेला और बनगाजी भी अंग्रेजों के हाथ में आ गये। इसी प्रकार फरवरी १९४१ में इटालियन सोमालीलैंड पर भी धावा बोला गया। २७ फरवरी तक किसमेयो, मोगाडिशू और केरेन पर जनरल वावेल की हिन्दुस्तानी फौजों ने कब्जा कर लिया था।

तब तक इटालियन फौजें अकेली ही लड़ रहीं थीं। इसी बीच फील्ड मार्शल अर्वन रोमेल ने प्रत्याक्रमण शुरु किया। एक मास भी अंग्रेज सेना उसका सामना न कर सकी और उसने सिरेनायका से पीछे हटना शुरू किया। लार्ड वावेल की किस्मत में लिखी गई पराजयों का श्रीगणेश यहां से ही होता है। २ अप्रैल को मर्गोत्रेगा, ३ अप्रैल को बेनगाजी और १३ अप्रैल को बरढिया पर हाथ साफ करने के बाद तोब्रुक का घेरा शुरु किया गया। तोब्रुक पर अधिकार करने के साथ ही २८ अप्रैल को सोलम पर जर्मन सेनाओं का कब्जा हो गया।

पराजय के इन्हीं दिनों में अंग्रेजी फौजों ने, जिनमें हिन्दुस्तानियों की संख्या बहुत अधिक थी, जर्मन फौजों के सामने आत्म-समर्पण करना शुरु कर दिया था। यह आत्म-समर्पण एक ही बार

और एक ही स्थान पर नहीं हुआ, अपितु अनेक बार अनेक स्थानों पर हुआ था। इसका एक प्रकार से तांता ही बंध गया था। मई १६४३ में जर्मनों के पैर उखड़ने के समय तक यह सिलसिला निरन्तर जारी रहा।

इन पराजयों और आत्म-समर्पण के पीछे एक लम्बी कहानी थी। निस्सन्देह, जर्मन सेनाओं के पास अंग्रेज सेनाओं की अपेक्षा युद्ध-सामग्री कहीं अधिक और अधिक ऊंचे पैमाने की थी, साथ ही उनकी सेनाओं की ट्रेनिंग भी बहुत ऊंची थी, किन्तु अंग्रेजों की पराजय और उनकी फौजों के आत्म-समर्पण का कारण इतना ही न था। संख्या में ये जर्मनों से कहीं अधिक थीं। लेकिन, उनमें भावना का सर्वथा अभाव था और यही उनमें सबसे बड़ी कमी थी। एक फौजी में मौत को भी पराजित करने की जो दृढ़ इच्छा होनी चाहिये, उसका भी उनमें अभाव था। इसका कारण यह न था कि हिन्दुस्तानी फौजियों में ये सद्गुण बिल्कुल भी न थे। उनके ये सारे सद्गुण असन्तोष की राख के तले दब गये थे। जिस दुर्व्यवस्था में से उनको गुजरना पड़ता था, उससे उनके असन्तोष की आग और भी अधिक धधक उठती थी। लेकिन, वह आग प्रसुप्त ज्वालामुखी के पेट के भीतर ही भीतर सुलगती रहती थी। लड़ाई के मैदान में जाकर उन्होंने यह भी अनुभव करना शुरू किया कि उनको उनके साथ लड़ना पड़ता था, जिनके साथ उनका कुछ भी विरोध न था। स्वयं गुलाम होते हुए दूसरों को गुलाम बनाने के लिये लड़ने पर उनके हृदय में आत्म-ग्लानि सी पैदा होती थी। बाद में उनके कानों में यह बात भी पड़ चुकी थी कि उनके देश के महान नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस जर्मनी पहुंच गये हैं

३

हिन्दुस्तानी फौजों में असन्तोष

हिन्दुस्तानी फौजों में असन्तोष की चिंगारी उनके विदेश में रवाना होने से पहिले ही पैदा हो चुकी थी। विदेश में जाने पर उसको अनुकूल हवा मिलते ही उसमें लपटें सुलग उठीं और उसने शीघ्र ही प्रचंड रूप धारण कर लिया।

सेना में भरती किए गये रंगरूट बातचीत करने पर यह स्वीकार करने में संकोच न करते थे कि वे लाचार किये जाने पर ही सेना में भरती हुए हैं। वह लाचारी क्या थी? बेकारी, भुखमरी, तंगी और गरीबी से पैदा हुई परिस्थितियों ने उनको फौज में भरती होने को लाचार किया था। हिन्दुस्तान में जबरन या बाधित भरती कभी भी नहीं हुई। फिर भी फौजों में भरती होने वाले युवकों की कमी कभी भी अनुभव नहीं की गई। जीवन निर्वाहके लिए जो क्लर्की करने में असमर्थ थे, उनके लिये फौज के सिवा दूसरा कोई धन्धा न था। शिक्षितों में भी बेकारी का इतना जोर था कि वे भी फौज में जाने को लाचार थे। लेकिन, वहां के दुर्व्यवहार से सहसा उनकी आंखें खुल गईं। ट्रेनिंग के दिनों में उनके

साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार और भी अधिक अपमानजनक था। कभी कभी तो उस पर उनका खून खौल उठता था।

ट्रेनिंग में प्रायः अंग्रेजी भाषा से काम लिया जाता था। गांवों से भरती किये गये बहुत से अनपढ़ रंगरूटों को "राइट-लैफ्ट" का मतलब समझने में ही कई सप्ताह लग जाते थे। उनके शिक्षक उनको समझाने के स्थान में स्कूल के बच्चों की तरह पीट डालते थे। उनको यह सब सहना पड़ता था। अन्यथा फौज से निकाल दिये जाने का भय उनके सामने बना हुआ था। कुछ न कर सकने से उनका असन्तोष और भी भीषण रूप धारण कर लेता था। इस प्रकार शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही तरह के सिपाही असन्तोष की आग दिल में लिये हुये फौज की नौकरी के दिन किसी प्रकार पूरे करने में लगे हुये थे।

भोजन की समस्या भी कुछ कम टेढ़ी न थी। फौज में भोजन इतना कम या खराब तो न था, लेकिन, अव्यवस्था के कारण वह न तो काफी होता था और न अच्छा ही। नानकमीशन अफसरों के कृपा-पात्र बनने के लिये और ऐसे ही लोगों को खुश रखने के लिये लंगर में काम करने वाले उनको अच्छे से अच्छा भोजन देनेकी कोशिश करते थे। परिणाम यह होता था कि सिपाहियों का भोजन खराब होजाता था। सिपाही रसोइयों या अफसरों के विरुद्ध मुंह तक खोलने का साहस न रखते थे। अनुशासन, नियंत्रण और व्यवस्था के नाम पर उनको यह सारा अन्याय और अनाचार सहन करना पड़ता था। उनका काम हुक्म का पालन करना होता था। इसमें मीन-मेख निकालना उनका काम न था।

क सिपाही के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर एक मजेदार ब्यौरा हम यहां दे रहे हैं। यह उसकी आपबीती कहानी का एक हिस्सा है। १९४१ की यह घटना है। उत्तर भारत की एक बड़ी छावनी में कैंप के बाहर बनिये की एक दूकान थी। सूबेदार-मेजर, जमादार, एडजूटैन्ट और कैम्प के दूसरे अफसर अपने परिवारों के साथ वहां रहते थे। उनका सारा खर्च वह बनिया पूरा किया करता था। उसके बदले में उस बनिये को क्या मिलता था? सिपाहियों को लूटने की उसे खुली छुट्टी होती थी। सिपाही शहर नहीं जा सकते थे। इसलिये उनको अपनी जरूरत का सारा सामान उसी से खरीदने को बाध्य होना पड़ता था और वह उनसे मनमानी कीमत वसूल करता था। सामान भी अच्छा न मिलता था। दूध में पानी तो क्या, पानी में दूध मिलाकर बेचा जाता था। सूटकेस, ट्रंक, बाल्टी, खाकी कमीज, पाजामा, पगड़ी, टोपी आदि सब कुछ उनको उसी के यहां से लेना पड़ता था। वह सारा सामान प्रायः उधार लिया जाता था और उधार चुकाने के लिये उनकी सारी तनखाह उस बनिये को दे दी जाती थी। वह तनखाह भी क्या होती थी? केवल सोलह रुपया महीना।

प्रायः सभी स्थानों में कम-अधिक मात्रा में ऐसा ही होता था। अफसरों के साथ मिले हुये बनिये जोंक की तरह सिपाहियों और रंगरूटों की तनखाह चूस लेते थे। इससे असन्तोष पैदा होना सहज और स्वाभाविक था।

युद्ध-बन्दी बनाये जाने के बाद जो दुनिया उनको दीख पड़ती थी, उससे उनकी आंखों पर पड़ा हुआ परदा हट जाता था और वास्तविकता उनके सामने कठोर सत्य बनकर आ खड़ी होती थी। उन्हें

अधिक सुख-सुविधा और आराम के साथ जीवन बिताने का अवसर मिलता था। वे अपने को युद्ध-बन्दी की अवस्था में फौज से भी अधिक सुखी अनुभव करते थे। साधारण सिपाहियों को फौज में कभी कभी तम्बाकू तक नसीब न होता था। पढ़े-लिखे सिपाहियों की मानसिक खुराक के लिये समाचार-पत्रों और पुस्तकों तक की समुचित व्यवस्था न थी। उनको केवल "फौजी अखबार" मिलता था, जिसमें राजनीति की तो क्या ही चर्चा होती थी, उनको अपने काम की भी कोई चीज उसमें न मिलती थी। राजनीतिक साहित्य का रखना सर्वथा वर्जित था। राजनीतिक नेताओं के बारे में चर्चा तक करना अपराध माना जाता था। देश की राजनीति के साथ उनका कुछ भी सम्पर्क न था। दूसरे देश वालों के सम्पर्क में आने पर फौजियों की जब आंखें खुलतीं, तब उनमें असन्तोष के साथ साथ आत्मग्लानी की भी भावना पैदा हो जाती और वे अपने फौजी जीवन को धिक्कारने व कोसने लग जाते।

फौजों में फैली हुई अव्यवस्था के विरुद्ध सिर हिलाने वाले का नाम अपराधियों की सूची में दर्ज कर दिया जाता था। शिक्षक और दूसरे अफसर अपनी तरक्की के ख्याल से ऊंचे अफसरों के कान उनके विरुद्ध सदा ही भरते रहते थे।

फौजों में सिपाहियों को मिलने वाली तरक्की भी एक समस्या ही थी। जमादार और सूबेदार सदा ही तरक्की पाने की कोशिश में लगे रहते थे। वफादारों को ही तरक्की मिला करती थी। 'वफादारी' का मतलब था फौज की सारी अवस्था को सिर नीचा किये सहते जाना और अपने से ऊंचे अधिकारी की 'हां' में 'हां' मिलाते रहना। शिक्षित सिपाहियों को तरक्की मिलनी इसलिये मुश्किल थी कि उनके लिये

सिर नीचा किये 'हां' में 'हां' मिलाते जाना इतना आसान न था। उनको तरक्की मिलने के स्थान में प्रायः कैम्प-जेल की हवा खानी पड़ती थी। फौजी अव्यवस्था के विरुद्ध मुंह खोलना अनुशासन के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। अशिक्षित सिपाही देशभक्ति में शिक्षितों से पीछे नहीं थे, किन्तु वे, अंग्रेजों की कूट चालों को इतनी जल्दी और आसानी से समझ सकने में सर्वथा असमर्थ थे। उनको तो चुपचाप मुंह बन्द करके अपने "मास्टर" की सेवा करना ही सिखाया गया था। 'अनुशासन' और 'नियन्त्रण' के नाम पर उनसे मशीनों की तरह काम लिया जाता था। स्वतन्त्र वृत्ति को सन्देह, आशंका और अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था। ऐसे ही लोग सूबेदार या सूबेदार-मेजर बनाये जाते थे, जो 'राजभक्त' अथवा 'अफसर-भक्त' होते थे। ये भी साधारण फोजियों पर रौब जमाने और हकूमत चलाने लगते थे। परिणाम यह होता था कि उनके और सिपाहियों के बीच में एक खाई खुद जाती थी। अफसर-भक्त लोग कृपा-पात्र समझे जाते थे और दूसरों पर नियंत्रण के नाम से सख्तियां की जाती थीं। ऊपर से कुछ प्रगट न होने पर भी भीतर ही भीतर असंतोष की आग बराबर सुलगती रहती थी अनेक लोग फौज में से भाग निकलते थे। १६४०-४१ में ऐसे भगोड़ों की संख्या चरम सीमा पर पहुंच गई थी। हिन्दुस्तानियों के प्रति फौजों में भी रंगभेद और जातिभेद की दुर्नीति से काम लिया जाता था। इससे उनमें और भी अधिक असन्तोष पैदा होना स्वाभाविक था।

यहां हम उदाहरण के तौर पर उस हिन्दुस्तानी फौजका कुछ हाल देना चाहते हैं, जिसको नवम्बर १६४१ में मध्य पूर्व में भेजा गया था। दुश्मन की टैंक-फौज के मुकाबले में लड़ने वाली हिन्दुस्तान में खड़ी थी

गई अपने ढंग की यह पहली फौज थी। उसको यान्त्रिक युद्ध-सामग्री से टैंकों का मुकाबला करने के लिये लैस किया गया था। हैदराबाद-सिंध में उसकी ट्रेनिंग हुई थी। ट्रेनिंग के बीच में ही उसको समुद्र पार जाने का आर्डर मिल गया। पहिले उसको सिकन्दराबाद भेजा गया। यहां उसमें से कई सिपाही भाग खड़े हुये। अपने असन्तोष को प्रगट करने का उन्होंने एक और उपाय निकाल लिया। वह यह कि अपने को अयोग्य सिद्ध करने के लिये वे मोटर ट्रक की दुर्घटनायें बहुत करने लगे। अंग्रेज कमान-अफसर बहुत झुंझला जाता। सूबेदारों और सूबेदार-मेजरों पर गुस्सा निकालते हुये वह कहता कि तुम्हारा रेजीमैन्ट लड़ाई पर जाने के काबिल नहीं है। वे जाकर अपने आदमियों से कहते और आदमी यह जान कर बहुत प्रसन्न होते कि उनको समुद्र-पार नहीं भेजा-जायगा। ऐसी फौज को समुद्र-पार मोर्चे पर भेजने का जो परिणाम हो सकता था, उसकी कल्पना सहज में की जा सकती है।

एक दिन फौज को एकाएक बम्बई जाने का हुक्म मिला। उसको पुलिस के कड़े पहरे में भेजा गया। जहां भी कहीं गाड़ी खड़ी होती, उसको पुलिस घेर लेती और कड़ी निगरानी रखी जाती कि कहीं कोई भाग न जाय। बम्बई में भी उस पर कठोर पहरा रखा गया। नवम्बर १६४१ में उसको वहां से समुद्र-पार रवाना किया गया। ईरान की खाड़ी में बसरा पहुंचने में अधिक समय नहीं लगा। यहां उनको बिल्कुल नया अनुभव मिला। हालां कि जिन लोगों से वास्ता पड़ा, वे बिल्कुल नये थे, उनकी भाषा भी नई थी और उनका रहन-सहन का तौर-तरीका भी नया था, फिर भी उन पर उस सब का अद्‌भुत असर पड़ा। ईराक के विद्रोही नेता रशीद अली गिलानी के

विद्रोह को यद्यपि दबा दिया गयाथा, तो भी उसका असर अभी बाकी था। बसरा, बगदाद, मोसूल, सवानियां और बैजी आदि में जहां भी कहीं ईराक़ में वे जाते थे, ईराकी उनको दुश्मन की-सी निगाहों से देखते थे। कभी कभी तो नौजवान ईराकी उनसे पूछ ही बैठते थे कि "तुम ईराक क्यों आये हो?" कुछ तो यहां तक साफ साफ कह देते थे कि यदि तुम बहादुर सिपाही हो तो अंग्रेजों को क्यों नहीं अपने मुल्क से निकाल बाहर करते? हिन्दुस्तान का दुश्मन हिन्दुस्तान के बाहर नहीं, उसकी सीमा के भीतर ही है। हम भी तुम्हारी ही तरह इस दुश्मन से तंग हैं। तुमको इसकी मदद करनी बंद कर देनी चाहिये। इस पर हिन्दुस्तानी मारे लज्जा के सिर नीचा कर लेते थे। उन्होंने यह अनुभव करना शुरू किया कि वे स्वयं तो गुलाम हैं ही, दूसरों को भी गुलामी में फंसाने में लगे हुये हैं। इसी के साथ उनके दिमाग में यह विचार भी पैदा होना शुरू हुआ कि हम तो सिर्फ भाड़े के टट्टू हैं। इन सब बातों से वे और भी अधिक उत्तेजित हो गये और उनके असन्तोष की आग और भी अधिक भभक उठी।

इस चित्र का एक और पहलू भी है। ईराकी अंग्रेजों से बहुत नफरत करते थे। वे उनको 'काफिर" कहा करते थे। लेकिन हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ उनका व्यवहार शुरू शुरू में बहुत ही दोस्ताना था। उनको यह जान कर बहुत ही प्रशन्नता हुई कि हिन्दुस्तानी सिपाही अपनी स्थिति के लिये लज्जित हैं और वे यह अनुभव कर रहे हैं कि वे भाड़े के टट्टू और अंग्रेजों के हाथ का खिलौना हैं। लेकिन, उनमें कुछ काली भेड़ें भी थीं। उन्होंने अपने चाल-चलन से बहुत बुरा असर पैदा किया और उनके कारण हिन्दुस्तानियों के बारे में भी ईरानियों ने बही

राय बनाली, जो अंग्रेजों के बारे में बनाई हुई थी। इसी लिए कभी कभी उनको ईरानियों के हाथों अपमानित भी होना पड़ता था। यह अपमान असन्तोष की आग में घी डालने का काम करता था।

फिलस्तीन के निवासी भी हिन्दुस्तानियों को नफरत की निगाह से देखा करते थे। वहां यहूदियों और अरबों में तब भी संघर्ष मचा हुआ था। यहूदी कुछ सम्पन्न थे और अरबों की हालत गरीबी की थी। अरब यहूदियों और अंग्रेजों दोनों से नफरत करते थे। हिन्दुस्तानी सिपाहियों के वहां जाने पर अरबों ने उनसे भी नफरत करनी शुरू कर दी। कारण उनका हिन्दुस्तानी होना न था; बल्कि अरबों के विरुद्ध अंग्रेजों का साथ देना था। साधारण तौर पर अरब सिवाय यहूदियों के और सबके प्रति सहृदय ही थे। लेकिन, हिन्दुस्तानी सिपाहियों के प्रति उनका व्यवहार सहृदय तो क्या, बहुत ही रूखा था। इस अपमान से भी वे बहुत ही लज्जित हुये और उनमें आत्मग्लानि भी पैदा हुई। इस लज्जा और आत्मग्लानी के साथ हिन्दुस्तानी हलका दिल लिये हुये उत्तरी अफ्रीका की लड़ाई के मोर्चे के लिये विदा हुये।

फिलस्तीन से सीधा उत्तरी अफ्रीका जाने का रास्ता रेजीमेंट को बदलना पड़ गया और ईराक होकर मिश्र जाना पड़ गया। रास्ते में सभी स्थानों पर उसको विरोधी प्रदर्शन देखने को मिले। मिश्र की राजधानी काहिरा तक में विरोधी प्रदर्शनों से उनको धिक्कारा गया। जहां तहां लोग उनको कहते कि, ये गुलाम अपने मालिक के साम्राज्य की रक्षा करने के लिए अपना खून बहाने के लिए जा रहे हैं। ये उनसे लड़ेंगे, जो इनके नहीं, बल्कि इनके मालिकों के दुश्मन हैं।" इस प्रकार अपमानित हुए ये सिपाही जब तोब्रुक पहुंचे, तब उनको सारा

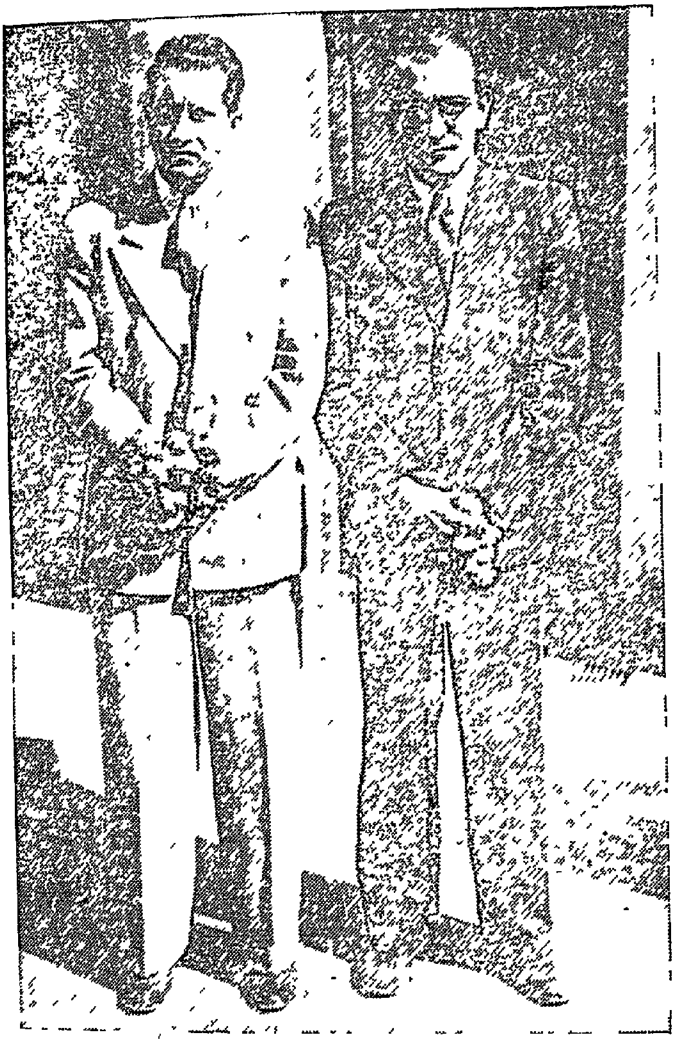
जोश ठण्डा पड़ चुका था। उस समय जर्मन फील्ड मार्शल रोमेल दुश्मन को धोखे में डालने के लिये पीछे हट रहा था और पीछे हटते हुये अल अघेला में बनाई गई रक्षा-पंक्ति तक पहुंच गया था। यहां से उसने प्रत्याक्रमण शुरू किया और तोब्रुक को दुबारा घेर लिया था। जिस हिन्दुस्तानी रेजीमेन्ट की यहां चर्चा की जा रही है, वह अल आदम में पड़ाव डाले पड़ी थी। यह तोब्रुक से तीन ही मील की दूरी पर और युद्ध-क्षेत्र से आठ-दस मील के फासले पर था। हिन्दुस्तानी सिपाही बहुत आसानी से जर्मनों की गति-विधि देख सकते थे। जर्मन और इटालियन हवाई जहाज तो उनके सिर पर ही मंडरा रहे थे।

यहां पर हिन्दुस्तानी सिपाहियों को एक और तमाशा देखने को मिला। अंग्रेज सेनाओं के साथ युद्ध का सामान बहुत ही कम था। उनकी गति-विधि डरी हुई सी थी। उनकी "वीरता" का तो दिवाला ही पिट गया था। अंग्रेजों का तोपखाना भी नगण्य सा था और जर्मनों के मुकाबले में तो वह खिलौना ही जान पड़ता था। गोला दागते ही अंग्रेजी तोपखाने को जर्मन तोपखाने का अचूक निशाना बनना पड़ता था। जर्मन तोपखाने से जवाब में छोड़ा गया गोला अंग्रेजी तोपखाने पर सीधी मार करता था। अंग्रेज जर्मनों से भयभीत जान पड़ते थे। सपने में भी वे "जेरी" "जेरी" चिल्लाते थे। "जेरी" शब्द जर्मनों के लिये काम में लाया जाता था। अंग्रेजों की बहादुरी के इस नजारे से हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आंखें खुल गईं और उन पर उनका असली रूप प्रगट हो गया।

इसी बीच हिन्दुस्तानी सिपाही जर्मनों द्वारा युद्ध-बन्दी बनाये जा चुके थे और अंग्रेजों ने उनको उनके हाथों से छुड़ा लिया था।

वे आपबीती बातें सुना कर अपने साथियों को बताया करते थे कि युद्ध-बन्दी होते हुये भी उनके साथ जर्मनों का व्यवहार अंग्रेजों से कहीं अधिक अच्छा था। पहिले से ही असन्तुष्ट उन पर इन बातों का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता कि वे अंग्रेजों की फौज में रहने की अपेक्षा जर्मनों की कैद में रहना अधिक पसंद करते। उनको यह पहिले ही पता था कि उनके देश के महान नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस यूरुप पहुंच गये हैं। जर्मनों द्वारा उनमें बांटे जाने वाले वे पर्चे भी वे पढ़ते ही थे, जिनमें उनसे अंग्रेजो का साथ छोड़ कर देश की आजादी के लिये लड़ने की अपील की जाती थी। इस मानसिक स्थिति में वे दूसरी ओर जा मिलने के अवसर की खोज में लगे रहते थे। यह स्थिति केवल फौजियों की ही थी। जमादार और सूबेदार दूसरी ही दुनियां में विचरा करते थे। वे जर्मनों के हाथों में गिरफ्तार होने के बजाय वापिस लौटना अधिक पसंद करते थे। वे फौजियों के सिर पर अपनी बहादुरी दिखाने की कोशिश में रहते थे। लेकिन, फौजी उनकी स्वार्थ पूर्ण चालों को खूब समझते थे। इस लिये वे सदा ही गिरफ्तार हो जाने की ताक में रहते थे। असन्तोष, लज्जा और आत्म ग्लानि की नींव पर खड़ी की गई फौज की इमारत का एक न-एक दिन गिरना निश्चित था। अन्त में वह गिर ही गई।

तोब्रुक के बाद जर्मनो ने उस रेजीमेन्ट को भी घेर लिया। १८ जून १९४२ को अंग्रेज कमांडर ने रेजीमेन्ट को उसी रात दूसरे स्थान पर जाने का आदेश दिया, फौजियों ने उसको मजाक में उड़ा दिया। वे यह समझ ही न सके कि जर्मनों का घेरा टल जाने के बाद इस मूर्खतापूर्ण आदेश के दिये जाने का क्या मतलब क्या है ? जैसे ही अंधेरे



श्री खुरशेद मामा और श्री हबीबुर्रहमान। श्री मामा बर्लिन में कायम की गई आजाद हिन्द सरकार में अर्थमन्त्री थे और श्रीरहमान बर्लिन रेडियो से हिन्दुस्तानीमें ब्राडकास्ट किया करते थे।

में रेजीमेंन्ट ने पीछे हटना शुरू किया, जर्मन तोपों ने आग उगलनी शुरू कर दी। नियन्त्रण और अनुशासन के नाम उन्होंने पीछे हटने के मूर्खतापूर्ण आदेश का भी पालन किया। लेकिन, जर्मन तोपों के आक्रमण के साथ ही सब अनुशासन और नियन्त्रण भंग हो गया। सबको अपनी जान के लाले पड़ गये। सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। लारियाँ आपस में टकरा गई। आपस में ही एक दूसरे पर गोलियां चल गईं। कितनों ही को इस भागड़ में जान से हाथ धोना पड़ गया। मोटरों और ट्रकों पर सवार हो कर बहुतों ने भाग जाना चाहा। पर, भाग निकलने के रास्ते का किसी को भी ठीक ठीक पता न था। जर्मन घेरा पूरा हो गया। टार्चों की रोशनी में उन्होंने आर्डर देना शुरू किया किटाके टाफ"—'हाथ ऊपर करो।" सहसा सब गिरफ्तार कर लिये गये। साधारण-सी तलाशी लेकर उनको कैंम्प में बंद कर दिया गया। सबेरे सब भगोड़ों को भी पकड़ लिया गया। रेजीमेन्ट के प्रायः सभी साथियों को वहां देख कर सब फौजी बहुत प्रसन्न हुये। जर्मनों द्वारा अपने साथ भी अंग्रेजों जैसा ही व्यवहार होता देख कर उनको बहुत प्रसन्नता हुई। रंग व जातिका वहा कुछ भी भेद न था। लेकिन, गिरफ्तार अंग्रेज अफसरों के दिमाग अब भी ठीक न हुये थे। उनका बरताव हिन्दुस्तानी फौजियों के साथ पहिले जैसा ही था। उदाहरण के लिये पानी की बहुत कमी थी। गरमी में प्यास के मारे फौजी तंग आजाते थे। अंग्रेज अफसर सारा पानी अपने कब्जेमें करलेते थे इसपर इतनीनाराजगी पैदा हो गई कि उन्होंने कुछ अफसरोंको पीट तक दिया।

सब युद्ध बन्दियों को बेनगाजी लाया गया। यहां साठ हजार युद्ध-बंदी कैद थे, जिनमें अंग्रेज, हिन्दुस्तानी, आस्ट्रेलियन, साउथ अफ्रीकन,

न्यूजीलैण्ड रूस आदि सभी थे। ये सब यूरोप ले जाये जाने की प्रतीक्षा में थे।

यह केवल एक रेजीमेण्ट का वर्णन बतौर नमूने के दिया गया है। जर्मनों द्वारा युद्ध-बंदी बनाये गये हिन्दुस्तानी फौजियों के आत्म-समर्पण करने की कम या अधिक प्रायः यही कहानी है। इन्हीं में से इटली में "आजाद हिन्दुस्तान लश्कर" खड़ा किया गया था और जर्मनी में नेता जी श्री सुभाषचन्द्र ने "फ्राइस इण्डोन लिजों" का संगठन किया था।

—:o:—

४

इटली में आजाद् हिन्दुस्तान लश्कर

१ इकबाल शैदाई बेनगाजी में

जुलाई १९४२ में बेनगाजी में हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों को एक दिन पता चला कि देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस उनसे मिलने के लिये जर्मनी से उनके कैम्प में आ रहे हैं। यह सुनते ही सारे कैम्प में उत्साह की लहर दौड़ गई और लोग उत्सुकता से उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। अपने नेता के दर्शनों के लिये वे लालायित हो उठे।

उनकी इस उत्सुकता को पूरा करने वाला दिन आखिर में आ ही पहुंचा। लेकिन लोगों की आशा निराशा में बदल गई, जब उनको यह पता चला कि आने वाले सज्जन सुभाष बोस न थे। बहुत ही कम लोगों के परिचित वे श्री इकबाल शैदाई थे। लेकिन, उनका आना भी कम महत्व का न था। वे भी भारत माता के एक होनहार सुपुत्र, कट्टर देशभक्त और स्वदेश की आजादी के लिये मतवाले युवक थे। देश को स्वाधीन देखने की साधना को पूरा करने की धुन में वे युरोप में इधर उधर चक्कर काटते फिर रहे थे। उसकी पूर्ति के लिये इनको यह सुन्दर

अवसर हाथ लग गया। उनके साथ एक सिख युवक निरंजनसिंह भी पधारे थे। रोम रेडियो से सरदार अजीतसिंह के साथ वे भी ब्राडकास्ट किया करते थे। उनके बेनगाजी पहुंचने पर सब हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों को एक स्थान पर इकट्ठा किया गया। हजारों लोग वहां इकट्ठे हुये। शैदाई ने उनके सामने भाषण देते हुये कहा:—

'मेरे देश बन्धुओं और दोस्तों! मैं आपके सामने झोली ले कर भीख मांगने आया हूं। अपने लिये नहीं, भारत माता के लिये आप से भीख मांगनी है। अब तक तो तुम लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके सम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिये लड़ रहे थे। अंग्रेजोंने तुमको तोपों के गोलों के सामने खड़ा करने के लिये खरीद लिया है। तुम्हारी किस्मत अच्छी है कि तुम बच कर यहाँ आ गये हो।

"दोस्तो! हमने इटली में हिन्दुस्तान की आजादी के लिये लड़ने को आजाद हिन्दुस्तान लश्कर खड़ा किया है। अपने दिमाग में यह ख्याल न आने दें कि उसको धुरी राष्ट्रों की मदद करने के लिए खड़ा किया गया है। हम सिर्फ हिन्दुस्तान के प्रति वफादार हैं, किसी और के प्रति नहीं। हमने यह अन्तिम तौर पर तय कर लिया है कि हम केवल अंग्रेजों के ही नहीं, किन्तु ऐसी हर ताकत के बरखिलाफ लड़ेंगे, जो हिन्दुस्तान में अपने पैर जमा कर उस पर कब्जा करने की कोशिश करेगी। यदि कोई तुमसे इटालियनों जर्मनों के लिये लड़ने को कहेगा, तो उसके विरुद्ध हथियार उठाने वाला मैं सब से पहिला आदमी होऊंगा।

"दोस्तो! अंग्रेजी साम्राज्यवाद अपने आखिरी दिन गिन रहा है। उसकी नींव हिल चुकी है। युद्ध से पैदा हुई स्थिति से हमें फायदा

उठाना चाहिये और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई में हिस्सा लेना चाहिये।

भाइयो! मुझे आप नौजवानों में से ऐसे साथी चाहिये जो समझदार और साहसी, हिम्मती देशभक्त, ईमानदार और निःस्वार्थी हों। वे जहां भी जायें, भारत माता का नाम रोशन करें। जब आप इटली और यूरोप में जायें तब आप देखेंगे कि वहां हम लोगों को बदनाम करने के लिए अंग्रेजों ने कितना गंदा प्रचार किया है। आप भारत माता की सन्तान हैं। इसलिये आपका कर्तव्य है कि आप उस प्रचार से पैदा किये गये, विषैले असर को लोगों के दिल व दिमाग पर से दूर करें। आपने उनके दिलों में यह भाव पैदा करना है कि आप सभ्य देश के नागरिक हैं। आप सदा ही गुलाम रहने वाले नहीं हैं। आपने उनको यह भी बताना है कि आप स्वतन्त्रता के प्रेमी हैं।

"दोस्तो! एक नया युग प्रगट हो रहा है और हमें अपने को इसी के लिये तय्यार करना है हमें अपनी आजादी हासिल करके उसकी रक्षा भी करनी है। आजादी उन्हीं को मिल सकती है जो उसके लिये साहस के साथ प्रयत्न कर सकते हैं। कमजोर, कायर और आलसी उसको प्राप्त नहीं कर सकते। हमें तो अवश्य ही आजादी प्राप्त करनी है और उसके लिये प्रयत्न भी जरूर करना है।"

भाषण इतना ओजस्वी और प्रभावशाली हुआ कि सुनने वाले मन्त्र-मुग्ध से रह गये। श्रोताओं ने वक्ता की करतल ध्वनि और हर्ष ध्वनि से बार बार सराहना की। कुछ सवाल भी पूछे। अन्त में प्रायः सभी ने "आजाद हिन्द लश्कर" में शामिल होने की इच्छा सहर्ष प्रगट की।

२ यूरोप में

श्री इकबाल शैदाई की बेनगाजी की यात्रा के बाद युद्ध-बन्दियों को दो हिस्सों में बांट दिया गया। एक में वे रखे गये जिन्होंने लश्कर में भरती होने की इच्छा प्रगट की और दूसरे में वे जिन्होंने उससे इन्कार दिया। दोनो को अलग-अलग कैम्पों में रखा गया। इटली भी उनको अलग अलग जहाजों में लाया गया। अंग्रेज कैदियों और अफसरों को उस जहाज पर लाया गया, जिस पर लश्कर में भरती होने से इनकार करने वाले सवार किये थे। इस जहाज पर रंगभेद के पक्षपात से काम लिया गया। अंग्रेज अफसरों तथा सिपाहियों को ऊपर की मंजिल में स्थान देकर हिन्दुस्तानी अफसरों तथा सिपाहियों को नीचे जगह दी गई। नीचे की जगह का तहखाना नरक से भी गया बीता था।

बेनगाजी से जहाजों के चलने के दूसरे दिन एक अंग्रेजी पनडुब्बी ने तारपीडो का दोनों जहाजों पर सीधा निशाना साधा। निशाना उसी जहाज पर लगा, जिसमें गोरे सवार थे। जहाज का ऊपर का हिस्सा उड़ गया। ३०० गोरे युद्ध-बन्दियों में से केवल दो अंग्रेज और पन्द्रह आस्ट्रेलियन बच सके। हिन्दुस्तानी सब के सब बाल बाल बच गये। दूसरे जहाज से उनको ग्रीस पहुंचाया गया। आजाद हिन्दुस्तान लश्कर के स्वयं सेवकों को ले जाने वाला जहाज तारपीडो से बचकर सुरक्षित इटली के बन्दरगाह पर पहुंच गया। स्वयंसैनिकों के हर्ष का पारावार न रहा। उसको उन्होंने दैवीय वरदान मान कर अपने भाग्य को बार बार सराहा और यह समझा कि भगवान ने हमें स्वदेश की आजादी की लड़ाई में अपना हिस्सा अदा करने के लिये ही बचा दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि आशीर्वाद या दैवीय वरदान के प्रति अपने को सच्चा साबित करने में उन्होंने कुछ भी उठा न रखा।

३ रोम में

बदरगाह पर जहाज से उतर कर आजाद हिन्दुस्तान लश्कर में शामिल होने वाले स्वयं सैनिकों को रेल के रास्ते या मोटर ट्रकों से रोम पहुंचाया गया। आजाद हिन्दुस्तान लश्कर के फौजियों ने दिल खोल कर राष्ट्रीय गानों के साथ अपने भाइयों का स्वागत किया। उनकी भुजाओं व टोपियों पर तिरंगे राष्ट्रीय झण्डे लगे हुए थे और चारों ओर तिरंगे झंडे फहरा रहे थे। एक ओर से "हिन्दुस्तान" का नारा लगता था, तो दूसरी ओर से "जिन्दाबाद" के घोष से आकाश गूंज उठता था।

४ सरदार अजीतसिंह और बाबा लाभसिंह

अमरशहीद भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह और सरदार लाभसिंह भी नये साथियों से मिलने के लिये आये। सरदार अजीतसिंह सबसे बगलगीर हुये और उनका दिल भर आया। भावावेश में आकर उन्होंने उनको सम्बोधन करते हुये कहा कि मेरे बच्चों! मैं तुम सबसे मिलकर इतना खुश हुआ हूं, जितना भगतसिंह को मिल कर हुआ होता। मेरे लिये तुम सब ही भगतसिंह हो। तुमको देख कर मुझे यकीन होगया कि अपने देश के आजाद होने में अब अधिक समय न लगेगा। अब अंग्रेजों या किसी कौम के लिये हिन्दुस्तान को पराधीन रख सकना या उसका शोषण कर सकना संभव न रहेगा।

५ आजाद हिन्दुस्तान लश्कर की शपथ

नये आये हुये स्वयंसैनिकों को आजाद हिन्दुस्तान लश्कर में घुल-मिल जाने में अधिक समय न लगा। उनमें से अधिक लोगों को फ्रान्स भेज दिया गया। ये वहां जाकर "फ्री इण्डियन लिजन" में

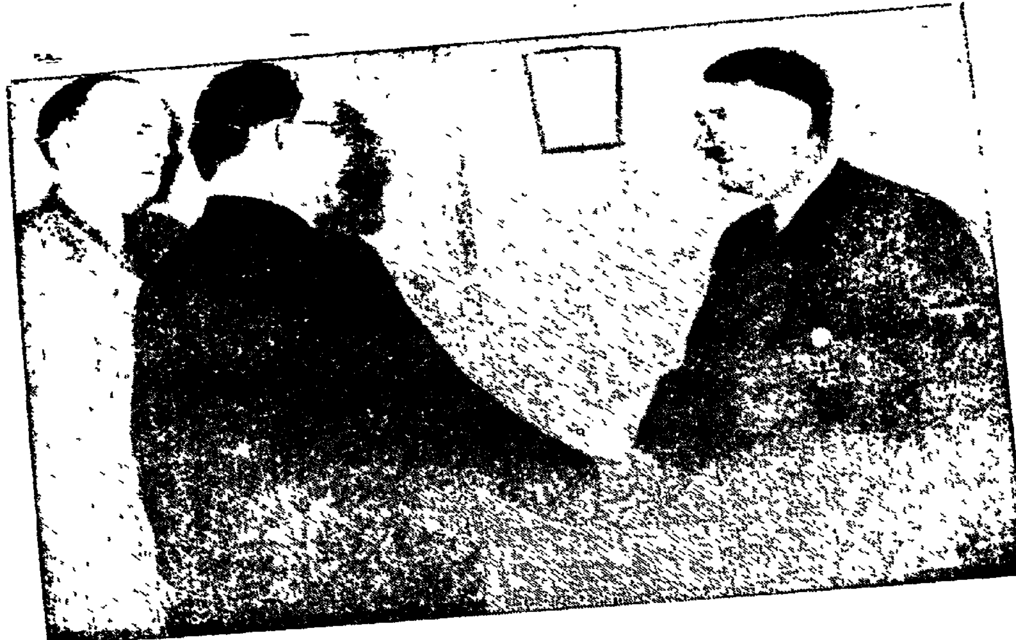
शामिल हो गये, जिसका संगठन नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने किया था। इटली में लश्कर में केवल पांच सौ फौजी रह गये। उनको नई वर्दी दी गई। तिरंगा झण्डा फहराया गया। परेड होने के बाद सबने निम्न शपथ ग्रहण की :

"मैं..................खुदाके नाम पर हलफ उठाता हूं कि मैं रजाकाराना "आजाद हिन्दुस्तान लश्कर" में शामिल होता हूं। मैं वतन की आजादी के लिये अपना तन, मन और धन सब कुछ न्योछावर कर दूंगा और अपने वतन की शान बढ़ाने के लिये बहतरीन कोशिश करूंगा। जो कोई भी मेरे प्यारे वतन पर काबिज होनेके मनसूबे बांधेगा उसकी मुखालिफत में अगर मुझे जान की बाजी भी लगानी पड़ी, तो मैं हंसता हंसता परवाने की तरह जान दे दूंगा। वतन से वफादारी मेरा जेवर होगा और उससे गद्दारी के जुर्म में मुझे जो सजा दी जायगी, इस पर मुझे कोई ऐतराज न होगा।"

आजाद हिन्दुस्तान लश्कर के लोग युद्ध-बंदियों के कैम्पों में आम तौर पर आया जाया करते थे और हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों से लश्कर में शामिल होकर देश की आजादी के लिये लड़ने का अनुरोध किया करते थे। इसका असर बहुत ही अनुकूल होता था और आजाद हिन्द लश्कर में फौजियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी।

६. ट्रेनिंग और कार्य

आजाद हिन्दुस्तान लश्कर के फौजियों को जो ट्रेनिंग दी जाती थी, उसके कई पहलू थे। फौजी ट्रेनिंग के अलावा उनको इटालियनों के साथ मिलने-जुलने और आपस में बरताव करने की भी ट्रेनिंग दी जाती थी, जिससे उनको हिंदुस्तान के बारे में सही सही जानकारी दी जा सके और



फूहरर हिटलर के साथ फ्राइज इवडीशो फुहरर

उस विषैले प्रभाव को दूर किया जा सके, जो अंग्रेजों ने अपने गंदे प्रचार से युरोप में पैदा कर दिया था। लश्कर के फौजियों ने सारे इटली का दौरा किया। उनको देख कर इटली के लोग चकित रह गये। बड़ी मुश्किल से उनके मन पर से उस प्रचार के प्रभाव को दूर किया जा सका और उनको यह बताया जा सका कि हिन्दुस्तानी स्वेछा से गुलाम नहीं हैं, बल्कि वे आजादी के लिये उतावले हैं, और उसके लिये यत्नशील भी हैं।

फौजी शिक्षा में कुछ भी कमी न रहने दी गई थी। एक बार लश्कर के फौजियों और इटालियन फौजियों में झूठ-मूठ की लड़ाई हुई। लड़ाई से पहिले परेड हुई। इसको देखने के लिये अनेक इटालियन जनरल, ऊंचे फौजी व नागरिक अफसर; और इकबाल शैदाई, सरदार अजीतसिंह तथा बाबा लाभसिंह आदि प्रमुख हिंदुस्तानी भी आये परेड के बाद झूठ-मूठ की लड़ाई शुरु हुई। २-४ घण्टों में ही लश्कर के फौजियों ने इटालियन फौज को घेर लिया। सारा डिविजन अपने अफसरों के साथ घिर गया। शैदाई और उनके साथी इस पर फूले न समाये। इटालियन लज्जित और क्रोधित हो कर रह गये। इटालियन डिविजन के कमाण्डर ने शैदाई के पास आकर उनसे पूछा कि "क्या ये वे ही हिन्दुस्तानी हैं, जिनको अंग्रेज इतना अदना या निकम्मा कहते हैं, और जिन्हें सिवाय राइफल के कोई और शस्त्र संभालने के सर्वथा अयोग्य बताते हैं। यदि सचमुच ये ही हिन्दुस्तानी हैं, तो आजाद हिन्दुस्तान की सेना संसार में सर्वश्रेष्ठ होगी।" शैदाई ने गर्व अनुभव करते हुये कहा कि "हां ये वे ही हिन्दुस्तानी हैं। फरक इतना ही है कि अब इन पर अंग्रेज का शैतानी परछाया नहीं पड़ रहा है। हम यहां

अंग्रेजों के लिये लड़ने को नहीं, बल्कि अपनी मातृ भूमि के लिये लड़ने की तय्यारी कर रहे हैं।"

इसी प्रकार का एक और उदाहरण है। कुछ लोगों को पैराशूट की ट्रेनिंग दी जा रही थी। कभी कभी हिन्दुस्तानी और इटालियन एक ही जहाज में एक साथ उड़ते थे। इटालियन शिक्षक ऊपर आ कर हुक्म देता था कि "फिया" अर्थात् "नीचे गिरो।"

हिन्दुस्तानी तुरन्त नीचे उतर पड़ता था और इटालियन को कभी कभी धक्का दे कर नीचे उतारना पड़ता था। पैराशूटी कमाण्डर इस पर हैरान रह जाते थे और हिन्दुस्तानियों की तारीफ के पुल बांधते हुये थकते न थे।

७. नेताजी इटली में

इन्हीं दिनों में नेताजी एक बार इटली पधारे थे। वे वहां वेनितो मुसोलिनी, काउण्ट सियानों और अन्य इटालियन नेताओं से मिले। आजाद हिन्दुस्तान लश्कर के कैम्प में जाकर वे फौजियों से भी मिले। इकबाल शैदाई, सरदार अजीतसिंह, बाबा लाभसिंह आदि से भी मुलाकात की और सारी स्थिति के सम्बन्ध में उनके साथ बात की। कुछ ही समय वहां रह कर नेता जी जर्मनी लौट आये।

८. लश्कर भंग कर दी गई

युद्ध का पासा पलट चुका था। इटालियनों के पैर उखड़ने हो गये थे। उनका पराजय निश्चित जान पड़ता था। आजाद हिन्दु लश्कर के फौजियों से उन्होंने उत्तरी अफ्रीका में काम लेना चाहा

समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। उस पर विचार
और यह तय हुआ कि इटालियनों के हाथ का खिलौना न बना
जरूरत पड़े, तो उनका भी मुकाबला किया जाय। हिंदुस्तानियों
रोष व असन्तोष पर कुछ समय तो इटालियन चुप रहे। लेकिन,
यनों की सन्दिग्ध मनोवृत्ति देखकर "आजाद हिन्द लश्कर" को
दिया गया। रोम और बारी रेडियो स्टेशनों से ब्राडकास्ट
चलता रहा। लश्कर के टूटते ही फौजियों को युद्ध-बंदी बना व
में कैम्प नं० ५७ में भेज दिया गया। अंग्रेज, आस्ट्रेलिय
लैण्डर, ग्रीक और सिफरेशियन तो क्या, हिन्दुस्तानी बन्दि
उनको अपने साथ रक्खे जाने का विरोध किया। कारण यह
कि वहां भी ये जहर फैला देंगे। रैड क्रास द्वारा दी गई
उनको लाभ न उठाने दिया जाता। इटालियनों ने इस
ध्यान नदिया। आजादी पसन्द इन लोगों का अंग्रेजपसन्
साथ पटती न थी। कई बार आपस में मारपीट भी
यन भाषा लश्कर वाले बहुत अच्छी तरह सीख गये थे।
में इटालियनों के साथ दोस्ती गांठना उनके लिये बा
वे अपनी जरूरत की चीज तुरन्त प्राप्त कर लेते थे।
पसंद न था। इस लिये वे दांत भीच कर रह जाते थे

उदेना कैम्प में आराम से दिन कटने लगे। धुरी
खाली करने को मजबूर होना पड़ गया। सिसिली
की सेनाओं का कब्जा हो गया। मुसोलिनी का
ली पर मित्र-सेनायें चढ़ आईं। बडोग्लिओ
३ को उदे

पतन का समाचार पहुंचा । अंग्रेज युद्ध-बन्दियों और उनके साथियों के हर्ष का पारावार न रहा । लश्कर के लोगों को भय हुआ, कि फिर अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार होना पड़ेगा । इसी बीच ११ अक्तूबर को जर्मनों ने आकर उस कैम्प को घेर लिया । जर्मनों ने उन सब को कैदी बना लिया और तुरन्त उनको जर्मनी पहुंचा दिया । लश्कर के लोगों को तो फ्राइन इण्डीनलेजों में शामिल होने की सुविधा दे दी गई । बाकी सबको""""में नजरबन्द कैंप में बंद कर दिया गया ।

५

सुभाष बोस जर्मनी में

वर्षों से विदेशों में निर्वासितों का सा जीवन व्यतीत करने वाले देशभक्त जिस अवसर की खोज में थे, वह उनको महायुद्ध से हाथ लग गया। एक ओर वे उससे लाभ उठाने में प्रयत्नशील थे कि दूसरी ओर उन्हीं के से विचार रखने वाले महान् देश भक्त श्री सुभाषचन्द्र बोस स्वदेश में बैठे हुये देश से भाग निकलने और इंग्लैन्ड के दुश्मनों के साथ मिल कर स्वदेश की आजादी के लिये प्रयत्न करने की योजना बनाने में लगे हुये थे। सुभाष बाबू ने महात्मा गांधी के साथ भी इस बारे में चर्चा की थी। आपने महायुद्ध के शुरू होने से बहुत पहिले कल्पना करते हुये महात्मा गांधी से कहा था कि इंगलैन्ड जबरन युद्ध में हिन्दुस्तान को भी घसीट लेगा, तब नेताओं को भी जेलों में ठूंस दिया जायगा। इससे कुछ भी लाभ न होगा। इस लिये एक उपाय है कि कोई नेता देश से भाग निकले, विदेश में जाकर स्वदेश को आजाद करने वाली फौज का संगठन करे और उससे हिन्दुस्तान पर हमला करे।

महात्मा जी के सामने आपने इटली के गैरीबाल्डी और जनरल
भी उदाहरण उपस्थित किये। महात्मा जी ने सुभाष बाबू से
कि स्वदेश को इस प्रकार आजाद करने में उनका कतई विश्
है। इस पर भी यदि वे स्वदेश को इस प्रकार आजाद क
उनको बधाई देने वाले वे पहिले व्यक्ति होंगे। इससे सु
यह धारणा बन गई थी कि अपने इस उद्योग के लिये
गान्धी का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है।

सुभाष बाबू अपने इस प्रयत्न में लगे ही हुये थे
नेताओं की तरह आपको भी १६४० के मध्य में गिरफ्त
डाल दिया गया। देश से निकल भागने के पहिले जे
आना जरूरी होगया। कई दिनों तक सोच-विचार क
बिना कारण बताये हुये अनन्त काल के लिये की
विरोध में आमरण अनशन करने का निश्चय किया।
बल स्वभाव को देखते हुये आप यह जानते थे कि
अनशन आपके लिये घातक सिद्ध हो सकता है।
आपने अनशन शुरू किया। जेल-अधिकारियों का
आपको अपने निश्चय से विचलित न कर सका
को आपको रिहा करने के लिये बाध्य होना पड़
करके भी आप अपने घर में नजरबन्द
स के

आने देते थे। यहा ...

और खाली बरतन भी परदे की आड़ में से उठा लिए ...

खाट खड़ाऊं और पूजा-पाठ का सामान जुटा कर यह प्रकट किया गया कि आप दिन-रात ध्यान में मग्न रहते हैं।

१५ जनवरी को आप युक्तप्रांत के मौलवी का भेष बना कर घर से निकल पड़े और कलकत्ता से चालीस मील दूर जा कर गाड़ी पर सवार हो गये। लाहौर होते हुये आप पेशावर पहुंच गये। २६ जनवरी १९४१ को आपके भाग निकलने का समाचार लोगों को पता चला और चारों ओर आश्चर्य व विस्मय प्रकट किया जाने लगा। यह सुनने में आया कि आप साधु बन कर हिमालय की ओर तपस्या करने चले गये हैं, एक बार यह भी सुन पड़ा कि हरिद्वार-ऋषिकेस के पास आप साधु बेश में गिरफ्तार किये गये हैं। महीनों तक आपका अता-पता तक किसी को मालूम न हुआ। तरह तरह की अफवाहें सुनने में आती रहीं। लेकिन सुभाष बाबू अपने रास्ते पर निर्विघ्न बढ़ते चले गये। गाड़ी में उन्होने अपना नाम "जियाउद्दीन" रख लिया और अपने को इंशोरेंस का काम करने वाला बताते रहे। १७ जनवरी को पठान के देश में आप काबुल की यात्रा के लिए निकल पड़ें। रहमत खां आपके साथ हुआ। उसका असली नाम 'भगत राम' बताया जाता है और कहा जाता है कि वह सीमाप्रांत के मरदान जिले के गल्लादेर गांव का निवासी था। पेशावर से आप मोटर पर जमरूद किले की सड़क

से गढ़ी तक गये। यहां से आगे का रास्ता पैदल तय किया गया। सुभाष बाबू बहरे और गूंगे बन गये। अददा शरीफ के पीर बाबा की मसजिद में आपने रात काटी। लालपुर के खान ने आपको एक पत्र दिया। काबुल के सरकारी क्षेत्रों में भी उसका अच्छा प्रभाव था। मशकों पर सवार हो कर २३ जनवरी को काबुल नदी पार की गई। ठका गांव के पास एक ट्रक में सवार हो कर आप आगे बढ़े। बुतखाक गांव में पासपोर्ट देखे जाते हैं। यहां पूछताछ होने पर रहमतखां ने कह दिया कि "यह मेरा बड़ा भाई है। बेचारा बहरा और गूंगा है। मैं इसको सखी साहब की जियारत के लिये ले जा रहा हूं। हम आजाद कबीले के रहने वाले हैं। तसल्ली के लिये लालपुरा के खान का पत्र भी दिखा दिया गया। ट्रक से २५ जनवरी कीशाम को ४ बजे आप काबुल पहुंच गये। यहां एक गंदी और तंग सराय में रहते हुये मास्को और इटली के दूतावासों से सम्बन्ध कायम करने की कोशिश की गई। रात को आग जला कर सरदी दूर की जाती और दिन में चाय और सूखी रोटी खा कर किसी तरह गुजारा चलता। इस तंगी और तकलीफ में पुलिस का एक भूत भी पीछे पड़ गया। उसको कुछ दे दिला कर और अन्त में अपनी सोने की घड़ी भी भेंट चढ़ा कर जैसे तैसे टलने का यत्न किया गया। लेकिन, उसने पीछा न छोड़ा। इस तरह तेरह दिन वहां पूरे करने के बाद आप रहमतखां के साथ काबुल के हिंदुस्तानी व्यापारी श्री उत्तमचन्द मेहरोत्रा के घर पर आ गये। श्री उत्तमचन्द ने आपको अपने यहां ठहराने में बहुत धैर्य और हिम्मत से काम लिया। एक महीना बीस दिन आपके यहां रह कर सुभाष बाबू १८ मार्च की सवेरे ६ बजे जर्मनी के लिये विदा हो गये।

मास्को के दूतावास से निराश होकर इटली के दूतावास के साथ सम्पर्क कायम किया गया। बीच में इटली वालों से भी निराश हो कर वैसे ही मास्को जाने की योजना बनाई गई, जैसे कि आप काबुल तक पहुंचे थे। लेकिन; इटली के दूतावास का सन्देश मिलने पर वह योजना स्थगित कर दी गई। काबुल से रवाना होने के समय सुभाष बाबू मियां जियाउद्दीन से सेनोर करोटना बन गये। इसी नाम से आपका पासपोर्ट बनाया गया था। जर्मन दूतावास के अफसर डा० वैलर और एक इटालियन उनके साथी थे। पीछे दूसरी मोटर में सामान था। रात रूसी सरहद पर पुले खुमरी गांव में बतलाई गई। दूसरी रात अफगान सीमा को पार कर रूस में बिताई गई। २० मार्च को ट्रेन पर सवार होकर आप मास्को के लिये रवाना हुये। मास्को से बर्लिन का रास्ता हवाई जहाज पर पूरा किया गया और २८ मार्च को आप वहां पहुंच गये। बर्लिन पहुंच कर आप सेनोर ओ० मोजोना के नाम से लोगों से मिलने-जुलने लगे। सात मास तक आप इसी नाम से काम चलाते रहे और इस बीच में युरोप के प्रायः सभी बड़े बड़े लोगों से मिलते रहे। प्रायः सारे ही युरोपका आपने दौरा किया और कुछ हिन्दुस्तानियों से भी मिले। अक्तूबर १९४१ में आप "सुभाषचन्द्र बोस" के नाम से प्रगट हुये और तब लोगों को पता चला कि "हिन्दुस्तान का रहस्य पूर्ण नेता" जर्मनी पहुंच गया है। दो बार राष्ट्रपति के पद को सम्मानित करने वाले राष्ट्र-नेता को अपने बीच में पा कर युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानी लेकिन, उनको तब भी यह पता न था कि युरोप में "आजाद हिन्द सरकार" की स्थापना हो कर वह उसका "राष्ट्रपति"

और वहाँ कायम की जाने वाली "आजाद हिन्द फौज" का "सेनापति" भी बनेगा। निकट भविष्य में ही निर्माण होने वाले इस सर्वथा नवीन और महान इतिहास की तब लोगों के लिये कल्पना तक कर सकना संभव न था।

—(०)—

६

हर हिटलर से मुलाकात

बर्लिन में कुछ दिन बिताने के बाद श्री सुभाषचन्द्र बोस बर्लिन और हमबर्ग में स्थित हर हिटलर के हैड क्वार्टर में गये। वहां दोनों की मुलाकात होने वाली थी। एडोल्फ हिटलर ने सुभाष बाबू का बड़े प्रेम से यह कहते हुये स्वागत किया कि "मैं श्रीमान को बर्लिन में सुरक्षित पहुंचने पर हार्दिक बधाई देता हूं।" सुभाष बाबू ने आभार प्रगट करते हुये धन्यवाद दिया। कुछ दिन आप वहां ही रहे और कई बार हिटलर से मिले। आपने हिटलर को अपनी सारी योजना बतादी और कहा कि मैं युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों और युद्ध-बन्दियों को इस लिये संगठित करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के भीतर चलने वाली आजादी की लड़ाई को बाहर से मदद पहुंचाई जाय। आपने यह भी स्पष्ट कह दिया कि यह संगठन सर्वथा स्वतन्त्र होगा, उसमें किसी का भी हस्तक्षेप न हो सकेगा और उसका उपयोग केवल हिन्दुस्तान की आजादी के लिये किया जा सकेगा। आपने यह भी कहा कि जर्मनी के अधिकृत युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को इसी संगठन के आधीन

माना जाय और जो उसमें शामिल होना चाहे उसके मार्ग में बाधा पैदा न की जाय। साम्यवादी होने से जिनको अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता अथवा जो नजरबन्द हैं, उनको भी स्वतन्त्र किया जाना चाहिये और उनको भी इस संगठन तथा आंदोलन में शामिल होने का अवसर दिया जाना चाहिये। हर हिटलर ने इन बातोंको स्वीकार कर लिया और सुभाष बाबू को अपना कार्य करने का पूरा अवसर भरोसा दिलाया।

यह मुलाकात न केवल हिन्दुस्तानियों के लिये, बल्कि जर्मनों के लिये ऐतिहासिक घटना थी। सुभाष बाबू अभी 'ओ० ओजेला' के नाम से ही प्रसिद्ध थे। सात मास बाद जब इसका भेद खुला, तब इन मुलाकातों को बहुत अधिक महत्व दिया गया। इन मुलाकातों के, दोनों नेताओं के हाथ मिलाते हुये फोटो समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुये और हाथों-हाथ बिकने लगे। उसके बाद 'सुभाष बाबू' को सरकारी गैरसरकारी तौर पर "फ्राइज इण्डिशे फूहरर"—"आजाद हिन्द का नेता" लिखा और कहा जाने लगा।

जर्मनी के प्रोपागेण्डा मिनिस्टर डाक्टर जोसेफ गोयबेल्स, हवाई सेनापति मार्शल हरमन गोयरिंग, गुप्तचर विभाग के चीफ हाइनरिख हिमलर से भी मिले। इन तथा अन्य नेताओं के साथ बातचीत करते समय के चित्र भी बाद में प्रकाशित हुये।

२. ईराक के प्रधान मंत्री और फिलस्तीन मुफ्ती आजम से मुलाकात

अप्रैल १९४१ में सुभाष बाबू ईराक के क्रान्तिकारी नेता रशीद अली गिलानी से मिले। अप्रैल १९४० में रशीदअली ने ईराक में एक क्रान्ति पैदा करके वहां उस सरकार की स्थापना कर दी थी, जो ईराक के



हर हिटलर, गोयरिंग और सुभाषबोस (पहली मुलाकात के समय)

महायुद्ध में भाग लेने के सर्वथा विरुद्ध थी। वह अंग्रेजों की भी विरोधी थी। इसलिये उसको अंग्रेज सेनाओं का कड़ा सामना करना पड़ा था। जब वह उनका मुकाबला न कर सके, तब युरोप की ओर भाग निकले। जर्मनी में आकर उन्होंने "स्वतन्त्र ईराक सरकार" की स्थापना की। वे उसके प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने सुभाष बाबू के जर्मनी आने और आजाद हिंद आन्दोलन के संगठित करने पर बहुत खुशी प्रगट की। दोनों आपस में बहुत प्रेम से मिले और अनेक बातों पर परस्पर चर्चा हुई। रशीदअली ने सुभाष बाबू को उनके प्रयत्नों में सहायक होने का पूरा विश्वास दिलाया। इस मुलाकात का समाचार भी कई महीनों बाद प्रगट किया गया था।

एशिया के एक और महान नेता से भी सुभाष बाबू की ऐतिहासिक मुलाकात हुई। भीषण क्रान्ति के ये कट्टर उपासक जैरूसैलम अथवा फिलस्तीन के मुफ्ती-ए-आज़म हाजी अमीर-उल-हुसैनी थे, जो फिलस्तीन में ही नहीं, किन्तु मध्य पूर्व के सभी देशों में रहने वाले अरबों के आज भी अप्रतिद्वन्दी नेता हैं। फिलस्तीन में यहूदियों को बसाने की अंग्रेजों की नीति के विरोध में १९३८ में "अरब हाई कमेटी" के प्रधान के नाते आपने सशस्त्र विद्रोह किया था। उसके असफल हो जाने से आपको सीरिया आ जाना पड़ा। वहां फ्रांसीसियों की हकूमत होने से १९४० में आपको ईराक की राजधानी बगदाद आने को लाचार होना पड़ गया। यहां आपने रशीदअली का साथ देकर उस द्वारा किये गये विद्रोह का समर्थन किया। ईराक से आप ईरान आ गये। लेकिन, १९४१ में ईरान पर रूस और अंग्रेजों द्वारा कब्जा कर लेने पर आपने ईरान छोड़ कर तुर्की जाने की कोशिश की, लेकिन, अंग्रेजों के दबाव

के कारण तुर्की दूतावास के अफसरों ने आपको तुर्की जाने का पासपोर्ट नहीं दिया। इस लिये आप जर्मनी के पराजय के बाद मित्र राष्ट्रों का वहां कब्जा हो जाने पर अमेरिका के अधिकृत प्रदेश में थे। आपने अमेरिकनों से स्वतन्त्रता पूर्वक रहने की आजादी मांगी। आपको स्विस-फ्रेंच-सीमा के एक गांव में रहने की स्वतन्त्रता दे दी गई। जून-जुलाई १९४६ में सारे संसार ने विस्मय के साथ यह सुना कि आप उस गांव से भाग निकले हैं।

एकाएक गायब होने के बारे में अनेक अनुमान लगाये गये। यह कहा गया कि अंग्रेजों ने आपको उड़ा लिया है और आपकी हत्या कर दी गई है। लेकिन, संसार और भी चकित रह गया, जब उसने सुना कि मुफ्ती-ए-आजम काहिरा पहुंच कर मिश्र के बादशाह फारूक के मेहमान बन गये हैं। कहा जाता है कि आप अमेरिकन क्रूजर में सवार होकर मिश्र चले गये। फिलस्तीन के भीषण आन्दोलन का संचालन करने वाली अरब हाई कमेटी' के प्रेसिडेण्ट इस समय आपके छोटे भाई हैं। यह आम धारणा है कि वास्तव में आप ही उनका नेतृत्व एवं संचालन कर रहे हैं। एशिया के इन दोनों महान क्रान्तिकारी नेताओं मुफ्ती-ए-आजम और देश भक्त सुभाष बोस की मुलाकात बर्लिन में १९४१ में हुई।

—(o)—

७

"नेताजी" का सम्मान

सितम्बर १६४१ में सुभाष बाबू ने युरोप का दौरा किया। इस दौरे में आप फ्रांस, हालैण्ड, इटली और अन्य देशों में भी गये। यह दौरा आपने जर्मन सरकार द्वारा भेंट किये गये अपने हवाई जहाज में किया। फ्रांस और हालैण्ड में रहने वाले हिन्दुस्तानियों से आपने परिचय किया। ए० सी० एन नेम्बियर, गिरिजा मुकर्जी और एम० वी० राव आदि को आपने जर्मनों की कैद से रिहा कराया था। आपने भिन्न भिन्न राजनीतिक दलों और उनके विचारों के झमेले में न पड़ कर केवल एक ही बात को प्रधानता दी। वह यह कि समस्त हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान की आजादी के लिये एकमत हैं और वे अंग्रेजों के विरोध में संयुक्त मोर्चा बनाने के लिये तय्यार हैं। इस लिये आपने सबको एक संगठन में पिरोने का यत्न किया। इसी विचार से युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों का एक सम्मेलन बर्लिन में अक्तूबर १६४१ में करने का निश्चय किया गया।

हालैण्ड और बेल्जियम से फ्रांस जाने के बाद सुभाष बाबू इटली गये और वहां बेनिटो मुसोलिनी और विदेश मन्त्री काउण्ट सिआनो से मिले। मुसोलिनी से आपकी यह दूसरी मुलाकात थी। पहिली मुलाकात १९३८ में तब हुई थी, जब सुभाष बीमार होकर युरोप गये थे। युरोप के दौरे के बाद अक्तूबर १९४१ में बर्लिन में रहने वाले श्री आबिदहुसैन से आपका अच्छा परिचय हो गया था। उनके सहयोग से आपने बर्लिन में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को चाय का निमन्त्रण दिया। यह निमन्त्रण अपने आपने असली नाम से न देकर सेनोर ओ० मो ो ा के नाम से दिया था। और उस पर जो पता दिया गया था, वह बर्लिन स्थित ब्रटिश दूतावास का था। युद्ध शुरू होने पर वहां से यह दूतावास हट चुका था। इस लिये निमन्त्रण पाने वाले चकित से रह गये। फिर भी वे सब नियत समय पर वहां पहुंचे। उनको यह देख कर और भी अधिक आश्चर्य हुआ कि निमन्त्रित किये गये सभी हिन्दुस्तानी हैं और बर्लिन से बाहर युरोप के दूसरे स्थानों पर रहने वाले हिन्दुस्तानियों को भी उसमें बुलाया गया था। उससे भी अधिक आश्चर्य उनको यह देख कर हुआ कि उनको निमन्त्रित करने वाले सज्जन लम्बे, ऊंचे, खूबसूरत, हृष्टपुष्ट काली गान्धी टोपी लगाये हुये तथा शेरवानी पहिने हुए हैं और वे सबका हिन्दुस्तानी में आतिथ्य-सत्कार कर रहे हैं। वे यह जान कर और भी चकित व स्तब्ध से रह गये कि उनको निमन्त्रित करने वाले उनके महान नेता देश भक्त सुभाषचन्द्र बोस ही हैं। उनके बारे में उन्होंने सुना तो बहुत था, लेकिन, उनको देखने का उनमें अधिकांश को यह पहिला ही मौका मिला था।

चाय के दौरान में सुभाष बाबू ने यूरोप आने का अपना उद्देश्य सबको समझाया। आपने कहा कि मेरा उद्देश्य हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई को यूरोप से शुरू करने का है। मैं चाहता हूं कि स्वदेश में होने वाली लड़ाई को बाहर से मदद पहुंचाई जाय। विदेशों में, विशेष कर धुरी राष्ट्रों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को युद्ध से पैदा हुये सुनहरी अवसर से पूरा लाभ उठाना चाहिये। इस मौके को उन्हें खोना नहीं चाहिये। इसके लिये हिन्दुस्तानियों का आपस में संगठित होना बहुत जरूरी है। युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों के साथ-साथ हमें युद्ध-बन्दियों को भी संठित करना है और आजाद हिन्द आन्दोलन की फौज के रूप में उन्हें तय्यार करना है।

सबने सुभाष बाबू के विचार का समर्थन किया और उसमें तन-मन धन से पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। अपना तन-मन-धन सर्वस्व न्यौछावर कर देने की सबने तत्परता दिखलाई।

अक्तूबर १९४१ में बर्लिन में बुलाये गये सम्मेलन में सुभाष बाबू को "नेताजी" के नाम से सम्मानित किया गया। जर्मनी तथा अन्य देशों की सरकारों तथा लोगों में सुभाष बाबू "फ्राइज इण्डिशे फूहरर" अर्थात "आजाद हिन्द के नेता" के नाम से मशहूर हो गये।

—(०)—

८

ाइज इण्डोन लिजों

१६३६ में फ्रांस में गिरफ्तार किये गये हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दी बर्लिन से पूर्व में कुछ मील पर न्यूमबर्ग में रखे गये थे। बर्लिन-सम्मेलन के बाद नेताजी वहां गये। हिन्दुस्तानी फौजकी बीसवीं से सञ्जर कम्पनी के वे फौजी थे। उनकी संख्या केवल २५० ही थी। नेताजी ने इन सबसे बातचीत की। जब उनको पता चला कि नेताजी आजाद हिंद फौज का संगठन कर रहे हैं, तब उन्होंने उसमें शामिल होने की इच्छा प्रकट की। ये ही लोग वास्तव में उसकी नीव डालने वाले थे।

उन सबको खूनिंगसबुर्ग में लाया गया। यहाँ प्रस्तावित आजाद हिन्द फौज का ट्रेनिंग कैंप कायम किया गया। कुछ को फ्रांकनबुर्ग में कायम किए गए दूसरे कैम्पमें भेजा गया। इसी कैम्प में अधिकृत रूपसे आजाद हिन्द फौज खड़ी कीगई थी। युरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रहने वाले नागरिकों को भी यहां फौजी ट्रेनिंग दी जाती थी।

२६ जनवरी १६४२ के स्वतन्त्रता-दिवस को फ्राकनबर्ग में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। सुप्रतिष्ठित हिन्दुस्तानियों के अलावा

जर्मन और जापान सरकारों के प्रतिनिधि भी इस समारोह में शामिल हुये थे। हिन्दुस्तानी स्वयं सैनिकों की परेड के बाद नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अधिकृत रूप से "फ्राइज इंयडीन खिजो" के कायम किये जाने की घोषणा की। फूहरर हिटलर, डूचे मुसोलिनी, जापानी राजदूत जनरल ग्रनेशीमा तथा युरोप के अन्य प्रमुख लोगों से बधाई के अत्यन्त उत्साहप्रद सन्देश प्राप्त हुये थे।

फ्रांकनबुर्ग से नेता जी आनाबुर्ग गये। यहां भी हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों का एक कैम्प था। उनको नेताजी के आने की सूचना पहिले ही दे दी गई थी। जर्मन अधिकारियों को भी इसकी सूचना दे दी गई थी। लोगों में भी यह समाचार फैल गया था। बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष हजारों की सख्या में "फाइज इण्डिशे फूहरर" के दर्शन करने को लालायित हो कर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। बरगरमास्टर और जर्मन फौजी अफसर तथा हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों ने नेताजी का हार्दिक स्वागत किया। फूल-मालाओंसे आपको लाद दिया गया। स्टेशनसे कैम्प तक का रास्ता हिन्दुस्तान की तिरंगी राष्ट्रीय पताकाओं से सजाया गया था। कैम्प में पहुंचने पर युद्ध बन्दियों ने आपको 'गार्ड आफ आनर' देकर आपका सम्मान किया। नेताजी काली गांधी टोपी, काली शेरवानी और काली पेयट पहिने हुए थे। फिर भी आपने फौजी ढंग से सब का अभिवादन स्वीकार किया। सब युद्धबंदी अफसर और सिपाही तीन पंक्तियों में खड़े थे। उन्होंने "इनकिलाब जिन्दाबाद" और "नेताजी जिन्दाबाद" के नारों से आपका स्वागत एवं अभिनन्दन किया।

करतलध्वनि और हर्षध्वनि के बीच नेताजी बोलने के लिये खड़े हुए। आपने कहा कि—"देश भाइयो और दोस्तो! मैं आप सब से

मिलने के लिये यहां आया हूं। आपको मालूम है कि हमने 'फ्राइज इन्डीन लिजों'' की स्थापना की है, जिसको फ्रांकनबुर्ग और खूकिनस बुर्ग में फौजी ट्रेनिंग दी जा रही है। हिंदुस्तान में आजादी के लिए होने वाली लड़ाई में मदद करने के लिये यह फौज ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करेगी। इस फौज के लिये हमें और स्वयं सैनिक चाहिये। मुझे हजारों की भी नहीं कुछ सौ की ही जरूरत है। लेकिन, वे योग्य, समर्थ, सच्चे तथा ईमानदार होने चाहिये और उन्हें भारतमाता के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने को सदा ही तत्पर रहना चाहिये उन्हें उन विषैले और घातक प्रचार के विरुद्ध भी युद्ध लड़ना है जो अंग्रेजों ने युरोप में हिन्दुस्तानियों के बारे में किया है। हमें हिंदुस्तान का वास्तविक रूप लोगों के सामने पेश करना है और उन भ्रान्त धारणाओं को दूर करना है, जो हमारे बारे में युरोप में फैला दी गई हैं। हमें आजाद हिंद फौज को मजबूत बनाने के लिए अच्छी से अच्छी ट्रेनिंग देने का प्रबन्ध करना है।

"दोस्तो! आप में से कुछ को यह भ्रम या सन्देह हो सकता है कि हमारा उपयोग जर्मन स्वार्थों के लिए किया जायगा या हमें जर्मनों का गुलाम बना लिया जायगा। इस भ्रम को दूर कर दो। हमें जर्मनों के लिए नहीं, केवल स्वदेश के लिये ही लड़ना है। यह याद रखो कि स्वतंत्रता से वास्तविक प्रेम रखने वाली कोई भी जाति किसी दूसरी जाति को अपना गुलाम बना कर नहीं रखना चाहती।

"भाइयो, मुझे तो मौत को परास्त करने की हिम्मत रखने वाले स्वयं सैनिक चाहिये। मेरा साथ देने वालों को मैं सावधान कर देना चाहता हूं। मैं यह साफ कह देना चाहता हूं कि मेरे पास उनके लिए

फूलों की सेज नहीं है । उनको देने के लिए मेरे पास न तो जमीन, है और न जायदाद या नौकरियां ही हैं । मेरे पास मौत, भूख प्यास, तंगी-तकलीफ और मुसीबत के सिवा और कुछ भी नहीं है । जो भी मेरा साथ दें, वह सोच समझ और विचार करके ही दें । मैं किसी के साथ जोर-जबरदस्ती करना नहीं चाहता । मैं यह नहीं चाहता कि आज तो बातें बना कर आप साथ दें और कल मेरे साथ विश्वासघात कर बैठें । आप युद्धबन्दी ही बने रहना चाहें, तो आपकी इच्छा है । मुझे इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है । आपको कोई भी इसके लिये तंग न करेगा । तब भी आपको पूरी सुख-सुविधा देने की कोशिश की जायगी । मेरी नजरों में सब हिन्दुस्तानी समान हैं । मैं डरा धमका कर या सरसब्ज बाग दिखाकर आपको इस फौज में मिलाना नहीं चाहता । मुझे स्वेच्छा से मेरा साथ देने वाले चाहियें । यदि कोई अपना कुछ सन्देह दूर करना चाहें, तो करलें । मैं सब के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये प्रस्तुत हूं । एक बात मैं आपको फिर कह दूं कि जो मेरा साथ देंगे उनको केवल हिन्दुस्तान के लिये ही लड़ना होगा । किसी और के लिये नहीं ।"

व्याख्यान के बाद कुछ प्रश्न पूछे गये । नेताजी ने उनका उत्तर दिया । सब ने आजाद हिंद फौज में भरती होने की इच्छा सहर्ष प्रकट की । नेताजी ने सब को सोच लेने का एक और अवसर दिया । कैम्प के साथ एक 'फ्राइज इण्डिशे आफिस' अर्थात् 'आजाद हिन्द दफ्तर' खोल दिया गया और सब से कहा गया कि आजाद हिंद -फौज में भरती होने की इच्छा रखने वाले अपना नाम वहां दर्ज करा दें ।

अनाबुर्ग से नेताजी बर्लिन लौट आये ।

६

"सेराट्रूले फ्राइज इराडीन"

अक्तूबर १६४१ में बर्लिन सम्मेलन के ठीक बाद नेताजी ने "सेराट्रूले फ्राइज इन्डीन" नामसे "केन्द्रीय आजाद संघ" की स्थापना की। बर्लिन में इसका कार्यालय रखा गया और सारे युरोप में इस द्वारा कार्य किया गया। युरोप के हर देश और शहर में इसकी शाखायें स्थापित की गईं। नेताजी इसके प्रधान और श्री० ए० सी० ऐन नम्बियार इसके प्रधानमन्त्री चुने गये। श्री नम्बियार को हालैंड में जर्मन सरकार ने नजरबंद किया हुआ था और नेताजी ने उनको रिहा कराया था। केन्द्रीय कार्यालय के मन्त्री श्री० ए० ऐन० व्याम नियुक्त किये गये और परराष्ट्र विभाग का काम डा० सुलतान को सौंपा गया। अन्य पदाधिकारियों में डा० एन० के० बैनर्जी, डा० कर्त्तोराम, डा० ए० मल्लिक, श्री० ए० फारुकी, श्री गुरु पिल्लई, श्री सेनगुप्ता के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री गुरुपिल्लई अर्थ विभाग के अध्यक्ष थे।

पेरिस में "सेराट्रूले फ्राइज इराडीन" का जो आफिस खोला गया,

इसके अध्यक्ष श्री एम० बी० राव थे। वस्तुत: श्री राव विची सरकार के यहां नेताजी के राजदूत थे। श्री गिरिजा मुकर्जी को बेलजियम और हालैंड में वहां के आफिस का काम संभालने के लिये भेजा गया था। उनकी प्रतिष्ठा भी राजदूत के ही समान थी। श्री एम० के० मूर्ति को पोलैण्ड, हंगरी आदि देशों में प्रचार, आन्दोलन और संगठन के काम पर भेजा गया था।

"सेण्ट्राले फ्राइज इन्डीन" अर्थात् "आजाद हिन्द संघ" का मुख्य काम यूरोप में प्रचार तथा आन्दोलन करने और संघ तथा फौज के लिये चंदा जमा करने का था। नेताजी ने स्वयं भी अपने मंत्री श्री आबिदहसन के साथ इसी निमित्त से सारे यूरोप का दौरा किया था। अस्टरगार्ड और हमवर्ग तथा अन्य रेडियो स्टेशनों से ब्राडकास्ट करने का भी प्रबन्ध किया गया। थोड़े ही समय में संघ की ओर से अनेक रेडियो स्टेशनों से ब्राडकास्ट होने लग गया। उनके कई नाम रखे गये। कुछ नाम ये थे—(१) आजाद रेडियो, (२)आजाद मुस्लिम रेडियो, (३) नेशनल कोंग्रेस रेडियो और (४) हिमालय रेडियो। नेताजी के भाषण भी इन पर से प्राय: हुआ करते थे।

१. आजाद हिन्द पत्र

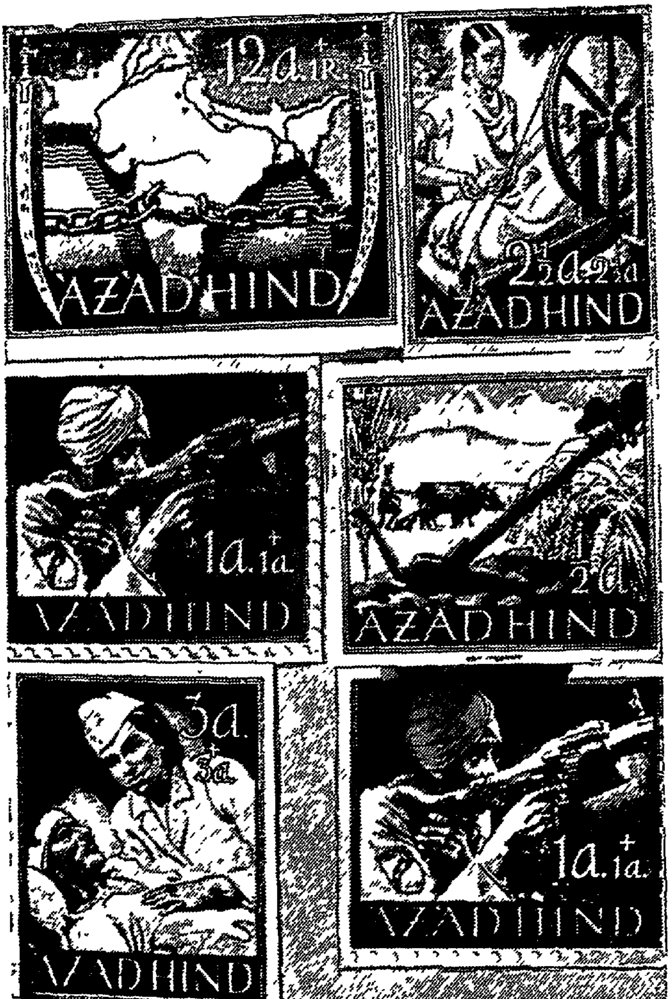
"सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन" की ओर से "फ्राइज इण्डीन मैगजीन" (आजाद हिन्द पत्रिका) के नाम से एक सचित्र पत्रिका प्रकाशित हुआ करती थी। हिन्दुस्तानी तथा अन्य भाषाओं में "भाई बन्द" नाम का साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित हुआ करता था। डाक्टर ऐन० के० बैनर्जी दोनों के सम्पादक थे। मासिक पत्रिका "फ्राइज इण्डीन" के ६०-७० पृष्ठ होते थे। "सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन" के प्रमुख लोगोंके इसमें लेख

रहा करते थे। नेताजी के भाषणों, दौरों और मुलाकातों का विवरण, हिन्दुस्तान में चलने वाली आजादी की लड़ाई के समाचार और पूर्वीय एशिया में संगठित की जाने वाली आजादी की लड़ाई की खबरें इसमें विशेष रूप से रहा करती थीं। इसके चित्रों, लेखों और समाचारों में जर्मनी के लोग विशेष दिलचस्पी लिया करते थे। हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानियों के बारे में इनकी राय बदलने में इन पत्रों ने विशेष काम किया और वे उनको आदर की दृष्टि से देखने लग गये ।

"भाई बन्द" साप्ताहिक मुख्य आजाद हिन्द फौजके लोगों के लिए प्रकाशित किया जाता था। आजाद हिन्द फौज के अफसर और फौजी ही इनमें प्रायः लिखा करते थे। निबन्ध-प्रतियोगिता की इसके द्वारा हुआ करती थी। हिन्दुस्तान और पूर्वीय एशिया के समाचारों को विशेषता दी जाती थी। फौज में यह पत्र बहुत अधिक प्रय था।

३. "जयहिंद का जन्म"

युरोप के हिंदुस्तानियों में इस प्रकार राष्ट्रीय जीवन, जागृति, चेतना और संगठन की भावना पैदा होने पर नेताजी ने यह अनुभव करना शुरू किया कि सब को एक सूत्र में कैसे पिरोया जाय। और एकता के स्वरुप का प्रदर्शन कैसे किया जाय ? युरोप के लोगों की यह आम धारणा थी कि हिंदुस्तानके लोग भिन्न २ जातियों, प्रांतों, धर्मों, सम्प्रदायों आदि के भेदभाव में उलझे हुए हैं और उनमें रहन सहन तथा भाषा आदिकी दृष्टिसे भी परस्पर बहुत अधिक अन्तर हैं उनमें सांस्कृतिक एकता का भी अभाव है। कुछ अंश तक यह ठीक भी था। और तो और आपस में एक दूसरे का अभिनन्दन अथवा सम्मान करने के लिए भी समान तौर पर किसी एक शब्द का प्रयोग नहोताथा। नमस्ते, राम राम,



डाक के ये टिकिट बर्लिन में कायम की गई आजाद हिन्द सरकार की ओर से आजाद हिन्द में काम में लाये जाने के लिये छापकर तय्यार किये गये थे।

अस्सलामा, ए—लेकम, जयराम जी की, जयजिनेन्द्र और सत श्री अकाल आदि शब्दों का प्रयोग भी प्रधानतया साम्प्रदायिक भावना से ही किया जाता था। नेताजी इस सारी स्थिति पर विचार करने के बाद इस परिणाम पर पहुंचे कि हिन्दुस्तानियों के जीवन-निर्वाह का मानदण्ड, रहन-सहन का धरातल, वेश-भूषा का रंग ढंग और बोल-चाल की भाषा आदि में समता, समानता और एकता पैदा की जानी चाहिये। अपने साथियों से आपने इस बारे में चर्चा की। सबने आपके इन विचारों को बहुत पसन्द किया।

नेताजी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री आबिदहसन हैदराबाद दक्षिण के रहने वाले थे। वे जर्मनी में डाक्टरी पढ़ने के लिये गये थे और कई वर्षों से वहां रहते थे। उन्होंने इस बारे में खूब विचार किया। नेताजी के वे अन्यतम भक्त थे और जो कुछ नेताजी सोचते या विचारते थे, उसमें वे अपने को तन्मय कर देते थे। उन्होंने नेताजी के सामने अपना सुझाव पेश किया। नेताजी ने ही नहीं, किन्तु युरोप के समस्त हिन्दुस्तानियों ने और युरोप से नेताजी के पूर्वी एशिया में आने पर वहां के सारे हिन्दुस्तानियों ने भी उसको सहसा अपना लिया। हिन्दुस्तान में भी उसने 'वन्देमातरम्' से कहीं अधिक महत्व प्राप्त कर लिया। यह उन्हीं का सुझाव था कि सारे हिन्दुस्तानी परस्पर के अभिवादन के लिये "जयहिन्द" शब्द को समान रूप से काम में लाया करें। नेताजी को यह सुझाव बहुत पसंद आया। थोड़े ही समय में सारे हिन्दुस्तानियों में उसने अपना घर कर लिया "फ्राइज इफ्कीन हिंजो" में शामिल हुये हिन्दुस्तानियों में साम्प्रदायिक भावना और साम्प्रदायिक भेदभाव का अन्त होकर उसका स्थान एकटू

यता ने पहिले ही ले लिया था। "जयहिन्द' शब्द से इस राष्ट्रीय भावना का प्रकाश इस रूप में होने लगा कि उसका प्रभाव जर्मनों पर भी पड़ने लगा। उसका जादू का सा असर हुआ। युवक हृदयसम्राट पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसका हिन्दुस्तान में प्रचार किया और अब वह उनके साथ सरकारी क्षेत्रों में भी जा पहुंचा है।

४. शिक्षा और सामाजिक कार्य

"सेयट्राले फ्राइज इण्डीन" की ओर से बर्लिन में कुछ केन्द्र कायम किये गये, जिनमें लोगों को शासन-सम्बन्धी ट्रेनिंग दी जाती थी। फौजी शिक्षा का भी इनमें प्रबन्ध था। जो लोग पंगु हो जाते थे, उनको उद्योग-धन्धो की शिक्षा दी जाती थी। फ्राइज इण्डीन के सभी कार्यकर्ताओं को विशेष प्रकार की शिक्षा या ट्रेनिंग दी जाती थी और उसकी अवधि एक मास की थी। उसके बाद आंदोलन एवं संगठन के काम पर उनको लगाया जाता था। इस ट्रेनिंग में युरोप के भिन्न भिन्न देशों के सामाजिक तरीकों की जानकारी प्राप्त करना, उसके रहन-सहन के तौर-तरीकों से अवगत होना, लोगों से मिलने-जुलने एव बातचीत करने का अभ्यास शामिल था। इस सबका प्रयोजन यह था कि कोई भी कार्यकर्ता कहीं भी जाकर अपने को हीन अनुभव न करे और स्वदेश के गौरव पर अपने आचार-विचार तथा व्यवहार से आंच न आने दे। अस्पताल भी सार्वजनिक रूप से बर्लिन तथा अन्य स्थानों में खोले गये थे, जिनमें हिंदुस्तानी डाक्टर लोगों की सेवा और परिचर्या किया करते थे। इनसे वहां के लोगों को हिंदुस्तानियों की सेवा-भावना का परिचय मिला और उनके प्रति सहानुभूति पैदा होने में विशेष सहायता मिली।

५. हिन्दुस्तान विरोधी फिल्मों पर रोक

महायुद्ध से पहिले युरोप में हिन्दुस्तानी फिल्मों का प्रदर्शन प्रायःनहीं होता था और जिनका प्रदर्शन होता था, वे सब अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध प्रचार करने के लिये बनाई गई थी। "गंगादीन" तथा "बंगाल लान्सरस" सरीखी फिल्में हिन्दुस्तान के बारे में बहुत ही गंदा और भद्दा चित्र पेश किया करती थीं। उनका निर्माण वास्तविकता की अवहेलना करते हुये गर्हित मनोवृत्ति से केवल कल्पना के आधार पर किया गया था। नेताजी के प्रयत्नों से ऐसी सब फिल्मों का प्रदर्शन करना बंद कर दिया गया और नयी फिल्में तय्यार की गईं।

६. आजाद हिन्द फौज फिल्म

"सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन" के प्रचार और प्रोपगेण्डा विभाग ने इसी बीच में "आजाद हिन्द फौज" के नाम से एक फिल्म तैय्यार किया। लूनिक्सवुर्क में यह फिल्म तैय्यार किया गया था। यहां आजाद हिन्द फौज का एक ट्रेनिंग कैम्प भी था। इसी कैम्प में इसके चित्र खींचे गये थे। हिन्दुस्तान के तिरंगे राष्ट्रीय झण्डे के शान के साथ फहराने के दृश्य से यह शुरू होती थी। झण्डे के पीछे बतौर पृष्ठ-भूमि के आजाद हिन्द फौज को कूच करते हुए छायाचित्र के रूप में दिखाया गया था। उसके बाद अपनी काली पोशाक में नेताजी प्रकट होते थे, जो युद्ध बंदियों के कैम्प में जाते हुये दिखाये गये थे। वहां आप एक ओजस्वी भाषण देते हैं। युद्ध-बन्दी फूल-मालाओं से आपको लाद देते हैं। आजाद हिंन्द फौज की वर्फीली जमीन में परेड होती है। बीच में तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा शान के साथ फहराता है। उस पर चरखे के स्थान पर छलांग मारते हुये शेर का निशान बनाया गया था। नेताजी

खड़े हों और उनकी किस्में सलामी के लिये उठते वक्त ये कहें कि ऐ शहीदाने वतन ! जिस चमन को आपने अपने खून से सींचा था, आज उस चमन की हर क्यारी यौवन पर है। या खुदा, तू हमारे उन रहनुमाओं को, जिन्होंने अपनी पूरी जिन्दगियां जेलों में काटीं, उन्हें आजादी का फल जल्द से जल्द चखा और हमें अपनी रहमत से इस काबिल बना कि हम भी उनकी इस नेक और पाक जद्दोजहद में हिस्सा ले सकें। तेरा नाम सच्चा है। तेरे नाम से दुःख दूर हो जाते हैं।"

इस प्रार्थना के बाद फिर कुछ राष्ट्रीय गीत गाये जाते थे। किसी से भी आजाद हिन्द आन्दोलन, संगठन, संघ या फौज में शामिल होने के लिये नहीं कहा जाता था। लेकिन, इस प्रार्थना, भाषणों और गीतों का युद्ध-बन्दियों पर चमत्कार पूर्णप्रभाव पड़ता था। वे स्वेच्छा से फौज में भरती होने के लिये अपने को पेश करते थे।

—(०)—

१०

"फ्राइज इराडीन लिजों"

आजाद हिन्द फौज की स्थापना करने के समय नेताजी ने केवल पांच सौ स्वयं सैनिकों की अपील की थी; लेकिन, भरती होने वालों की संख्या जल्दी ही हजारों तक पहुंच गई। बारह महीनों में यह संख्या जल्दी ही साढ़े चार हजार तक पहुंच गई। इसमें युद्ध-बन्दियों के अलावा नागरिक भी काफी संख्यामें शामिल थे। ये यूरोप के सभी भागों से जर्मनी, आस्ट्रिया, बवेरिया आदि से शामिल हुये थे। सबको साधारण सिपाही के रूप में भरती किया जाता था और योग्यता तथा अनुभव के अनुसार फौजी ओहदे दिये जाते थे।

१. फौजी शपथ

"फ्राइज इराडीन लिजों" में भरती होने वाले वफादारी की निम्न शपथ लिया करते थे—

"मैं.....: ......खुदा के नाम पर आज हलफ उठाता हूं कि मैं चालीस करोड़ हिन्दुस्तानी भाई-बहिनों की बिना मजहबो-मिल्लत

तन, मन और धन से वतन से बाहर और वतन के अन्दर, सुख दुख में जिस हालत में रहूंगा, खिदमत करता रहूंगा। इस तिरंगे झण्डे को ऊंचा रखने और इसकी शान कायम रखने के लिये अगर जरूरत होगी तो हंसता हुआ अपनी जान की बाजी लगा दूंगा। आज से मैं गुलामी को हिकारत की नजर से देखूंगा। न खुद गुलाम रहूंगा और न यह पसंद करूंगा कि मेरी औलाद किसी गैर कौम की गुलामी में फंसे।'

यह शपथ राष्ट्रीय झण्डे के नीचे खड़े होकर दी जाती थी।

२. फौजी शिक्षण

आजाद हिन्द फौज का सदर मुकाम पहिले फ्रांकनबुर्ग में था। कुछ समय बाद इसको खूनिंग बुर्क में ले आया गया था। इन दोनों स्थानों के अलावा मैश्ररत्स में तीसरा ट्रेनिंग कैम्प था। यह स्थान रेगेनवामंलेगर से लगभग ७-८ मील की दूरी पर था। फौजी तालीम के साथ साथ सियासी तालीम भी दी जाती थी। सियासी तालीम का मकसद फौजियों में राजनीतिक चैतन्य पैदा करना था, जिससे वे कोरे फौजी ही न रह कर देश के नेता भी बन सकें। अर्थात् देश को आजाद करने के साथ साथ उसको प्रगति में भी सहायक हो सके। इसके लिये उनको देश का उसकी आजादी के लिये देश-विदेश में लड़ी गई सियासी लड़ाइयों का, इतिहास, सियासी नेताओं के जीवन-चरित्र, शहीदों की अमर गाथा और देश-विदेशों में हुई सभी क्रान्तियों का पूरा इतिहास पढ़ाया जाता था।

फौजी शिक्षण सर्वथा नवीन ढंग का होता था। युद्ध कला की पूरी शिक्षा दी जाती थी। इसके लिये फौज को कई यूनिटों अर्थात्



"फ्राइज इण्डीन लिजों" के दो वीर सिपाही गनेशीलाल और बेनीसिंह, जिनकी सहायता से ही आजाद हिन्द इनक़लाब के शानदार इतिहास के कुछ अज्ञात पन्ने इस पुस्तिका के रूप में लिखे जा सके हैं।

टुकड़ियों में बांटा गया था, जिनमें पैराशूटी, पैदल, घुड़सवार, वख्तरबंद और स्पेशल सर्विस की टुकड़ियां मुख्य थीं। पैराशूटियों को मेजरस्स में शिक्षा दी जाती थी। उनको हलकी व भारी मशीनों व टैंक विरोधी तोपों तथा भारी मार्टरस के चलाने, पहाड़ों पर लड़ने, तैरने, घुड़सवारी करने और सड़कों तथा पुल आदि बनाने की ट्रेनिंग दी जाती थी। पैदल घुड़-सवार और वख्तरबन्द टुकड़ियों को फ्रांकनबुर्ग और खुनिग्सब्रुक के कैंपों में ट्रेनिंग दी जाती थी। फ्रांकनबुर्ग का कैम्प प्राथमिक शिक्षा के लिये था। स्पेशल सर्विस यूनिट को विशेष काम सौंपा गया था। इसका शिक्षण बर्लिन में होता था। उसको जासूसी ढंग से छिप कर काम करने, दुश्मन के भेदियों तथा विश्वासघात करने वालों का पता लगाने की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। इस टुकड़ी के लोगों को भेदियों का विरोधी दल भी कहा जाता था। इसमें शुरू में केवल सोलह ही सदस्य थे। उनके नाम ये थे:—

चान्द चौपड़ा, बी० पी० दत्त, शीशन चोपड़ा, सूरेश्वरसिंह हमीदउद्दीन, मनजीतसिंह, हरभजनसिंह, गुलाम गौस, चेतसिंह, अमीर जमान, दौलतसिंह, जोगेन्द्रसिंह, लाभचन्द, बिशन चौपरा, गौराचांद और अरब खान। इन सब को "फेनर वेबर" का ओहदा दिया गया था। चांद चोपड़ा, बी० पी० दत्त और शीशन चोपड़ा क्रमशः इस टुकड़ी के मुखिया नियुक्त किये गये थे।

हिन्दुस्तानी में सारी ट्रेनिंग दी जाती थी। कभी कभी जर्मन शिक्षकों से भी काम लिया जाता था। लेकिन, उनको "सेट्राले फ्राइज इण्डीन" के मातहत काम करना पड़ता था और उसीके फण्ड से उनका वेतन दिया जाता था। ज्यों ही हिन्दुस्तानी उनका स्थान लेने को तैयार

हो जाते थे, उनको हटा दिया जाता था। हिन्दुस्तानी में शिक्षा देने के लिये सारे फौजी शब्द हिन्दुस्तानी में बनाये गये थे।

फौजी ओहदे जर्मन-सेना ढंग के थे। उनको भी हिन्दुस्तानी रंग में रंग दिया गया था। सबके नाम भी हिन्दुस्तानी रख दिये गये थे।

यह उल्लेखनीय है कि "फ्राइज इंडीन लिजों" के सब फौजी और "सेंट्राले फ्राइज इंडीन" के सब सदस्य एक साथ एक ही बैरकों में रहा करते थे। जाति, सम्प्रदाय, धर्म आदि का कोई भी भेदभाव उनमें न था। सबके भोजनालय भी एक ही थे और सब एक साथ बैठ कर भोजन करते थे। भोजन सबका एकसा होता था। किसी भी प्रकार का कोई भी भेदभाव उनमें न था।

३ श्याम बहादुर थापा गुरखा

नेताजी के जादूभरे नेतृत्व में फ्राइज इण्डीन लिजों के फौजियों को जो ट्रेनिंग दी जाती थी, उससे उनमें ऐसी भावना पैदा हो गई थी कि उससे उनका कायाकल्प ही हो गया था। जो लोग केवल आजीविका के लिये फौज में भर्ती हुए थे, राजनीतिक और फौजी ट्रेनिंग इस ढंग से दी गई थी कि वे सच्चे देशभक्त बन गए। युरोप के सभी लोग देशभक्ति की भावना के लिये उनकी प्रशंसा करते न थकते थे। वे इस परिवर्तन पर अचरज करते और दांतों तले अंगुली दबा कर रह जाते थे उनको यह आशा ही न थी कि हिन्दुस्तान में भी ऐसे सच्चे, ईमानदार, मेहनती और देशभक्त फौजी तय्यार हो सकते हैं। हिन्दुस्तानी स्वयं भी कुछ कम चकित न थे। वे यह अनुभव किया करते थे कि नेताजी ने जादू की छड़ी से उनमें देशभक्ति की अदम्य झलक पैदा करदी है।

लोगों की यह आम धारणा है कि जो गोरखा लोग अंग्रेज सेना में भरती होते हैं, वे ब्रिटिश सरकार के अन्ध भक्त होते हैं। लेकिन, 'फ्राइज इन्डीन लिजों' में भरती हुये गोरखे मातृभूमि के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में किसी से भी पीछे न रहे। खुनिस्सबुर्ग कैम्प में प्राणोत्सर्ग करने वाले एक ऐसे ही शहीद गुरखा का कुछ हाल यहां दिया जा रहा है। युरोप में खड़ी की गई आजाद हिन्द फौज का यह पहिला शहीद था।

थापा बहादुर अंग्रेज फौज का एक सिपाही था। उत्तरी अफ्रीका में तोब्रुक में जर्मन सेना ने उसको भी गिरफ्तार करके युद्ध--बंदी बना लिया था। फ्रांकनबुर्गमें फ्राइज इन्डीन लिजो के स्थापित किये जाने के बाद नेताजी अनाबुर्ग के युद्ध बन्दी--कैम्प में गये थे और अपने वहां युद्धबन्दियों के सामने एक भाषण भी दिया था, जिसमें उनसे आजाद हिन्द फौज में भरती होने की अपील की गई थी। थापा बहादुर उनमें एक था, जिसने सब से पहिले अपने को उसके लिए प्रस्तुत किया था। उसकी टुकड़ी के सूबेदार और जमादार ने उसको उसमें शामिल न होने को बहुत समझाया बुझाया और रोका भी लेकिन उसने एक न सुनी। उसने कहा कि "नेपाल और हिन्दुस्तान एक ही है। गुरखों पर भी मातृभूमी को आजाद करने का उतना ही दायित्व है, जितना कि हिन्दुस्तानियों पर है। गुरखों को भी हिन्दुस्तानियो के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर आजादी के मार्ग पर अनुसरण होना चाहिए। अबतक तो हमें अंधेरे में रखा गया है और भविष्य में जान-बूझकर अंधेरे में बना रहना तो बड़ी मूर्खता होगी। इस धारणा और विश्वास के साथ वह आजाद हिन्द फौज में भरती हुआ था और अपने साथ और गुरखों को भी खींच लाया था।

इस घटना की सूचना नेताजी को भी दी गई थी। इसीलिये नेताजी के हृदय में इसने अपना विशेष स्थान बना लिया था। अकस्मात खुनिग्सबुर्ग कैम्प में उसको निमोनिया हो गया और डाक्टरों की सारी मेहनत के बाद भी वह संभाल न सका। हालत नगीन होने पर उसने नेताजी के दर्शन करने की इच्छा प्रगट की। नेताजी को टेलीफोन से बर्लिन सूचना दी गई। नेताजी तुरन्त मोटर पर सवार होकर खुनिग्सबुर्ग कैम्प में आ गये और सीधे कैम्प अस्पतालमें श्याम बहादुर की रोगी शय्या के पास पहुंच गये। नेताजी के आते ही उसमें क्षणिक चेतना दौड़ गई और उसने खड़े होकर नेताजी को सैल्यूट करनेका यत्न किया, नेताजी ने उसको खड़ा होने से रोका। उसके पास बैठ कर उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। नेताजी ने उससे पूछा कि "श्याम बहादुर! तुम कैसे हो! तुम को कुछ चाहिए तो नहीं?"

श्याम बहादुर ने धीमीसी आवाज में कहा कि मैं-अन्तिम सांस लेरहा हूं, मुझे अब कुछ भी नहीं चाहिये, मुझे आपके दर्शन चाहियें थे। उनके मिल जाने से मुझे सब कुछ मिल गया। मेरेसे अधिक भाग्यशाली कौन होगा, जो मैं आपकी गोदमें प्राण छोड़ रहा हूं। लेकिन मुझे दुख है कि मेरे भाग्य में मातृभूमि को आजाद देखना न बदा था।

"जयहिन्द" कहते हुए उसका सांस बद हो गया और वह अनन्त निद्रा की गोद में लीन हो गया।

नेताजी की आंखों से आंसू वह निकले। उन्होंने भावावेश में आकर कहा कि "थापा बहादुर! तुम मरे नहीं हो। तुम सदा के लिये अमर हो गये हो। तुम्हारा नाम सदैव अमर रहेगा"

स्वर्गीय आत्मा के लिये कैम्प में प्रार्थना की गई । नेताजी ने प्रार्थना के बाद फौजियों को सबोधन करते हुये कहा कि श्याम बहादुर आजाद हिन्द फौज का पहिला शहीद है। इसकी शहादत को फौजी समारोह के साथ मनाना चाहिये। कैम्पमें एक दिन की छुट्टी रखी गयी। शोक परेड की गई। इसमें नेताजी भी शामिल हुए और स्वर्गीय आत्मा को फौजी सैल्यूट दी गई। उसकी पुनीत स्मृति में सौ गोले दागे गये। फौजी सम्मान के साथ थापा बहादुर के शव का यथाविधि दाह संस्कार किया गया।

बहादुर थापा चल बसा; किन्तु जाते हुए भी वह अपने साथियों के हृदय पर एक अद्भुत प्रभाव छोड़ गया। उसकी अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होंने स्वदेश को आजाद कराने का दृढ़ संकल्प कर लिया। नेताजी के बहादुर थापा के साथ किये गये इस व्यवहार का फौजियों पर जो जादू हुआ, वह लिखने का नहीं, किन्तु अनुभव करने का विषय है।

११

नेताजी

"सेण्ट्राल फ्राइज इण्डीन" और फ्राइज इण्डीन लिजों की सारी प्रवृत्तियों का संचालन स्वयं नेताजी किया करते थे। इसके लिये आपको अत्यन्त अधिक व्यग्र रहना पड़ता था। कभी आप बर्लिन में दीख पड़ते, तो कभी फ्रांकनबुर्ग में, कभी न्यूनिंगबुर्ग में और कभी मैलरिस में। कभी आप पूर्वीय जर्मनी में राइख फुहरर ऐडोल्फ हिटलर से उनके सदर मुकाम में मिलते हुए दीख पड़ते थे, तो कभी इल डूचे मुसोलिनीसे रोम के दक्षिण में हाथ मिलाते दीख पड़ते थे। कभी आप श्री नम्बियार के साथ गुप्त मन्त्रणा करते दीख पड़ते थे, कभी आप थियेटर हाल में बैठे हुए आराम के साथ सिनेमा देखते दीख पड़ते थे, कभी आजाद हिन्द फौजके फौजियों के साथ गप-शप लगाते दीख पड़ते थे, कभी हर हिटलर, गोयरिंग तथा जर्मन नेताओं के साथ परेड का मुआयना करते दीख पड़ते थे। कभी अपने फौजियों के सामने आप ओजस्वी भाषण देते दीख पड़ते थे, तो कभी आप माइक्रोफोन के सामने बैठे हुए अपने देशवासियों को सन्देश ब्राडकास्ट करते दीख पड़ते थे। कभी आप अत-

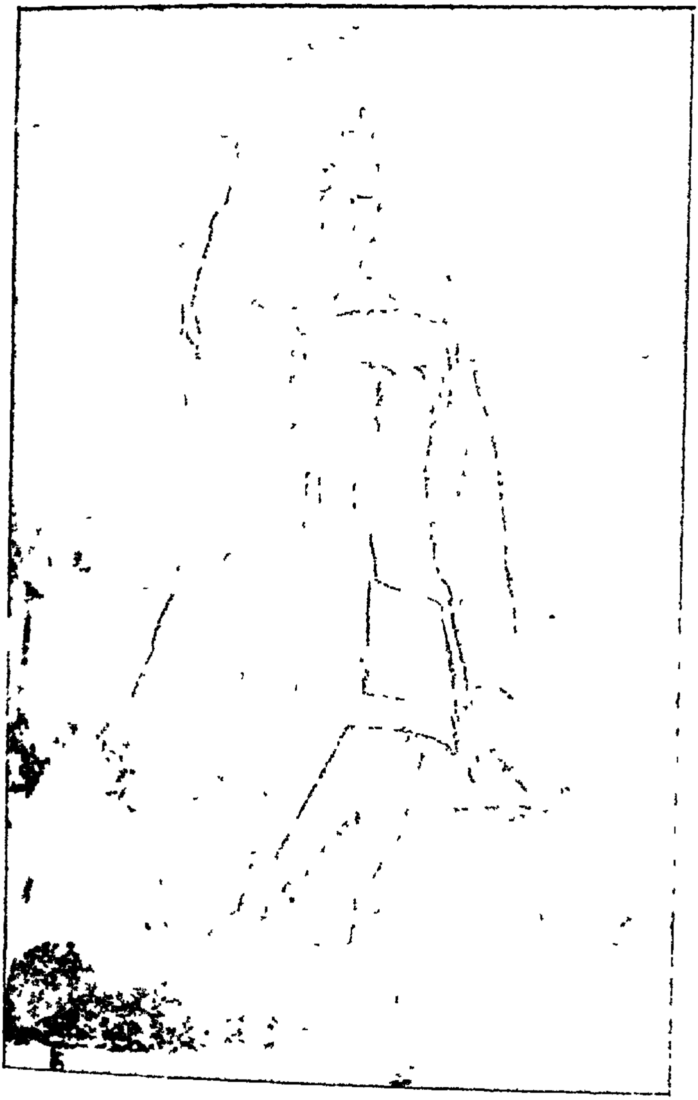
लान्तिक दुर्गपंक्ति पर जर्मन किलेबन्दी का निरीक्षण करते दीख-पड़ते थे, तो कभी रूस-जर्मन-युद्ध के मोर्चे पर हवाई उड़ान करते दीख पड़ते थे और कभी स्टालिनग्राड के मोर्चे पर इस युग के भयानक शस्त्रों की लड़ाई का मुआयना करते दीख पड़ते थे। संक्षेप में फ्राइज इण्डीश फूहरर, चौबीसों घण्टे स्वदेश की आजादी के महान आन्दोलन का संचालन, नियन्त्रण और निरीक्षण करने तथा उसके सम्बन्ध में छोटी-बड़ी योजनायें बनाने में लगे रहते थे। सारे दिन में मुश्किल से आप केवल तीन घण्टे आराम किया करते थे और इक्कीस घण्टे निरन्तर काम में लगे रहते थे। जर्मन जनता और नेता यह देख कर चकित रह गये कि नेताजी ने मिट्टी में से कैसे आदमी पैदा कर लिये और उन आदमियों को कितना पक्का सिपाही और सच्चे देशभक्त बना दिया, जो अपना तन-मन-धन सर्वस्व स्वदेश के लिये न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं। लेकिन, वे और भी अधिक चकित थे नेताजी की अपनी दिनचर्या पर। उनको इक्कीस घण्टे एक-सा काम करते देख कर उनके मुख से उनके लिये श्रद्धा व आदर की भावना प्रकट हुए बिना न रहती थी। यह सब उनके लिये एक जादू ही था।

१. एक जादू

अक्तूबर १९४२ में पाँच हजार युद्ध-बन्दियों का एक दल न्यूलेगर (खूनिरस ब्रुक) में आया। जैसे ही उनको यह समाचार मिला कि नेता जी ने आजाद हिंद-फौज की स्थापना की है उन्होंने उनके दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। खूनिरसब्रुक के पास एकट्राप्लेगर में एक सभा का आयोजन किया गया। आजाद हिंद फौज की कुछ टुकड़ियां न्यूलेगर भेजी गईं। उनके बैंड के साथ इन युद्ध-बन्दियों को एकट्राप्लेगर में

होने वाली, सभा में लाया गया। बड़ा ही शानदार वह जलूस था। खूनिस-बुर्क के लोगों ने ऐसा शानदार जलूस पहिले कभी न देखा था। हिंदुस्तान का तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा शान के साथ फहरा रहा था। राष्ट्रीय बैंड की गगनभेदी ध्वनि सब ओर व्याप्त रही थी। एकसे फौजी वेश में आजाद हिंद फौज शहर में से मार्च करती हुई जा रही थी। जर्मन लोगों के लिये वह एक अद्भुत दृश्य था। जिन लोगों ने अपने रुधिर से अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को सींचा था, आज वे उनको उखाड़ फेंकने के लिये नये सिरे से तय्यारी कर रहे थे और अपने इस संकल्प को प्रकट करने के लिये अपने नेता को फूल-मालायें अर्पित कर रहे थे। अपने नेता के ओजस्वी भाषण को उन्होंने बहुत ध्यान से सुना। भाषण में नेताजी ने उनको वह सब बताया, जो उनसे यत्नपूर्वक छिपा कर रखा जाता था। मातृ-भूमि के प्रति उनके कर्तव्य का आपने उनको बोध कराया। उनके हृदयों में अपने भूतकालीन जीवन के लिये पैदा हुई गहरी ग्लानि, वर्तमान के लिये पैदा हुआ दृढ़ संकल्प और भविष्य के लिये पैदा हुआ अदम्य उत्साह उनके चेहरों पर झलकने लगा। मानो, आत्म ग्लानि की काली घटाओं में दृढ़ संकल्प तथा अदम्य उत्साह की एक सुनहरी रेखा चमक गई और उज्ज्वल भविष्य की ओर स्पष्ट संकेत कर गई। तुमुल करतल ध्वनि और 'नेताजी जिंदाबाद', 'इनकिलाब जिन्दा-बाद, और आजाद हिंद जिंदाबाद' के नारों से आकाश गूंज उठा।

१९४२ के नवम्बर के अन्त में नेताजी स्टालिनग्राड के मोर्चे का मुआयना करने गये। वहां आपने जर्मन कमाण्डर-इन-चीफ के साथ सारे मोर्चे का दौरा और जर्मन सेनाओं का निरीक्षण किया। वहां से लौट कर नेताजी खूनिसबुर्क गये। वहां भाषण देते हुए आपने कहा कि जर्मनी



२४ अक्टूबर १९४३ की मध्य रात्रि में १२ बज कर ५ मिनट पर नेताजी आज़ाद हिन्द सरकार की ओर से इंगलैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर रहे हैं।

को अपने स्वार्थ के लिये रूस के साथ सुलह कर लेनी चाहिए। आपका कहना था कि रूस ऐसी ताकत नहीं है कि उसको आसानी से पराजित किया जा सके। आपने अपने फौजियों को सचेत और सावधान किया कि उनके लिए आराम की जिन्दगी बिताने के दिन समाप्त हो चुके हैं। उनको भीषण से भीषण स्थिति का सामना करने की तय्यारी करनी चाहिये और आशा रखनी चाहिये कि भविष्य में उनके लिए कुछ अच्छी स्थिति अवश्य पैदा हो सकेगी।

२. घातक आक्रमण

नेताजी के हिन्दुस्तान से रहस्यपूर्ण ढंग से गायब होने के समय से ही ब्रिटिश साम्राज्यकी खुफिया पुलिस आपकी खोज करने में लगी हुई थी। हिन्दुस्तान की पुलिस के साथ स्काटलैंड यार्ड के भेदिये भी इस काम पर तैनात किये गये थे। जब चर्चिल की सरकार को यह पता चला कि उसके साम्राज्य के लिये सबसे भयानक आदमी जर्मनी पहुंच गया है, वहां हर हिटलर से मिला है और उसने वहां आजाद हिंद सरकार की स्थापना करके आजाद हिन्द फौज का भी संगठन कर लिया है, तब वह और भी अधिक बेचैन हो उठी। युरोप में भी कुछ गुप्तचर नेताजी का पीछा करने के लिये भेजे गये। उनको हिदायत दी गई कि वे इनकी जान लेने में भी संकोच न करें।

बर्लिन में नं० ६ सोफिनस्ट्रासे में नेताजी ठहरे हुए थे। १९४१ के अन्तिम दिनों में उस मकान पर एक हाथगोला छोड़ा गया, जिससे मकान का एक हिस्सा उड़ गया। सौभाग्यवश नेताजी कुछ ही पहिले पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गये थे। हाथगोला छोड़ने वाली एक नौजवान लड़की थी। उसको तुरन्त पकड़ा गया, पता चला कि उसका

सम्बन्ध अंग्रेज खुफिया विभाग के साथ था और उसको इसी काम पर तैनात किया गया था। वह कई महीनों से नेताजी के मकान के पास के ही मकान में रह रही थी। वह अपने इस 'मिशन' को पूरा करने के अवसर की ताक में लगी रहती थी। सौभाग्य से नेताजी बच गये और उसका प्रयत्न सर्वथा निष्फल रहा।

—(०)—

१२

छलांग मारता हुआ शेर

२६ जनवरी सन १९४२ को 'स्वतन्त्रता दिवस' कुनिग्सब्रुक कैम्प में बहुत धूमधाम के साथ मनाया गया। शहर और कैम्प को तिरंगे राष्ट्रीय झण्डे से खूब सजाया गया था। फ्राइज इण्डीन लिजों के फौजियों ने शहर में तिरंगे झण्डे के साथ एक जलूस निकाला, जिसके सामने राष्ट्रीय बैंड गगनभेदी गर्जना करता हुआ चल रहा था। इस समारोह में नेताजी अपने साथियों और अनेक ऊंचे जर्मन अधिकारियों के साथ सम्मिलित हुए थे। बर्लिन-स्थित जापानी राजदूत जनरल ओशिमा तथा धुरी राष्ट्रों का साथ देने वाले देशों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। परेड के बाद शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई। विदेशों के उपस्थित प्रतिनिधियों ने अपने संक्षिप्त भाषणों में आजाद हिंद फौज के संगठन, नियन्त्रण, अनुशासन, शिक्षण तथा नेताजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति की मुक्त कण्ठ से सराहना की। उस सचाई और ईमानदारी की भी उन सबने सराहना की, जिससे प्रेरित होकर फौज के सिपाही स्वदेश की आजादी की लड़ाई को सफल बनाने का दृढ़ संकल्प

किए हुए थे। एक जर्मन जनरल ने अपने भाषण में कहा कि मुझे उस श्रद्धा भक्ति पर गर्व है जो जर्मन सिपाही अपने नेता के प्रति रखते हैं। लेकिन मैं यह देखकर चकित रह गया कि हिन्दुस्तानी फौजियों की श्रद्धा-भक्ति अपने नेता के प्रति और भी अधिक है। उनका नियन्त्रण और अनुशासन भी बहुत ऊंचे दरजेका है। इनमें इस भावना को पैदा करने वाले और स्वदेश की आजादी के देवदूत हिज एक्सिलैंसी सुभाषचन्द्र बोस के सामने मैं अपना गर्वीला माथा आदर के साथ झुकाता हूं। हम जर्मन भी इस फौज से काफी सबक सीख सकते हैं। मैं चाहता हूं कि मैं भी हिन्दुस्तानी सिपाही होता और नेता जी की कमान में भरती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता। ऐसे वीर योद्धाओं को जन्म देने वाली जाति का अधिक दिनों तक विदेशियों के पादाक्रान्त रहना सम्भव नहीं है।

नेता जी ने अपने ओजस्वी भाषण में स्वतंत्रता दिवस का महत्व बताते हुए उन घटनाओं का वर्णन भी विस्तार के साथ किया। जिनसे प्रेरित होकर १६३० में इस दिवस के मनाने का सूत्रपात किया गया था। आपने कहा कि—

"ऐ देश की आजादी की लड़ाई के मेरे साथियों! हमारे अतिथियों ने आप में पैदा हुए नियन्त्रण, अनुशासन, आदर भाव, सहयोग, त्याग तथा कष्ट-सहन आदि सद्गुणों की जो सराहना की है, उससे मेरा माथा गर्व के साथ बहुत ऊंचा हो गया है। युरोप में मैं जहां भी कहीं जाता हूं वहां मैं लोगों को आपकी प्रशंसा करते हुए सुनता हूं। मैं चाहता हूं कि अब इस "प्रशंसा और सराहना को

भुलाकर अपने ध्येय की ओर अग्रसर बनें रहें। यह आप न भूलें कि हमारा ध्येय अभी बहुत दूर है। हमें भारतमाता के गौरव की वृद्धि करनी है। युरोप के लोगों को हमें यह बताना है कि हिन्दुस्तानी वैसे नहीं है जैसा कि अंग्रेजों ने उनको बता रखा है। तुमको अपना और भारत माता का नाम रोशन करना है। हमें अभी बहुत कुछ सीखना है, जिससे हम अपने लक्ष्य की ओर तेजी के साथ बढ़ सकें। अपनी सारी कमियों और कमजोरियों को हमें जल्दी ही दूर करना है। निस्सदेह, अपने सद्गुणों से आपने नाम पैदा किया है और अंग्रेजों द्वारा पैदा की गई बदनामी को भी दूर किया है। लेकिन, अभी बहुत कुछ करना बाकी है। मैं युरोप के कोने कोने में स्वदेश की आजादी का सन्देश पहुंचा देना चाहता हूं और यह बता देना चाहता हूं कि स्वदेश के आजाद होने तक हम दम नहीं लेंगे। आगे नेताजी ने कहा कि "आपके लिये फौजी ट्रेनिंग ही काफी नहीं है। आपको राजनीतिक शिक्षा भी ग्रहण करनी चाहिये, जिससे आपमें आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान की भावना पैदा हो सके और आप छाती तानकर माथा ऊंचा करके दूसरों के सामने खड़े हो सके। आजाद हिन्द फौज के सैनिको को स्वावलम्बी बनकर स्वदेश के भावी नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में संभालनी हैं। माता की पुकार पर सर्वस्व न्यौछावर करने को तुम्हें सदा ही तय्यार रहना चाहिये। आपने यह सिद्ध कर दिया है कि अंग्रेजी साम्राज्य की शैतानी छाया के हटते ही हिन्दुस्तानी सिपाही क्या का क्या बन सकता हैं और वह अपने से बड़े दुश्मन का भी साहस के साथ सामना कर सकता हैं। मुझे पूरा विश्वास हैं कि

फ्राइज इण्डीन लिजों संख्या में कम होते हुए भी बड़े से बड़े दुश्मन का साहस के साथ मुकाबला करेगी।" जयहिन्द, इनकलाब जिन्दाबाद, आजाद हिन्द जिन्दाबाद और नेताजी जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूंज उठा।

इस समारोह के दो सप्ताह के बाद खुनिग्सब्रुक कैम्प के कमान अफसर को बर्लिन के सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन के सदर मुकाम से समाचार मिला कि नेताजी कैम्प में फौज का निरीक्षण करने आ रहे हैं। समाचार में यह भी लिखा गया था कि जर्मन सेना के साथ नकली लड़ाई लड़ने के लिये फौज को तय्यार रखा जाय। अपनी बहादुरी दिखाने का अवसर मिलने की खुशी में वे फूले न समाये। आजाद हिन्द फौज के सिपाही आपस में नकली लड़ाई लड़कर इस बात की होड़ करने लग गये कि कौन कितने जर्मनों को गिरफ्तार करता है। एक ने बीस को पकड़ने का दावा किया, तो दूसरा सौ को पकड़ने का दावा करता था। हर एक को विश्वास था कि उनकी निश्चय ही जीत होगी।

नेताजी के पधारने की पहिली रात को जोरों की बरफ गिरी। दूसरे दिन सवेरे चारों ओर बरफ ही बरफ दीख पड़ती थी। सर्दी भी खूब जोरों की पड़ रही थी। बरफ और सरदी की कुछ भी परवा न कर आजाद हिन्द फौज के सिपाही तिरंगा झण्डा फहराते हुये अपनी बैरकों में से निकल पड़े और अपने फौजी गाने गाते हुये तथा क्रान्तिकारी नारे लगाते हुए वे मैदान में पहुंच गये। मैदान बाहर से दस मील की दूरी पर था। नेताजी वहां पहिले ही पहुंच चुके थे। आप वहां 'सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन' के पदाधिकारियों और उच्च जर्मन

अधिकारियों के साथ पधारे थे। आस-पास के जर्मन लोग भी काफी संख्या में इकट्ठे हो गए थे।

जर्मन एस० एस० ब्रिगेड के साथ नकली लड़ाई होनी थी। दोनों सेनायें नियत समय पर मैदान में पहुंच गईं। आमने-सामने मोर्चा कायम करने के बाद लड़ाई शुरू हुई। जर्मन ब्रिगेड ने आजाद हिन्द फौज पर सात बार आक्रमण किया। सातों बार बड़ी वीरता के साथ सामना किया गया। नेताजी जर्मन अफसरों के साथ एक पहाड़ी टीले पर से लड़ाई को बड़े गौर के साथ देख रहे थे। अपने फौजियों की वीरता पर वे फूले न समाये। जर्मन जब थक गये, तब आजाद हिन्द फौज ने आक्रमण शुरू किया और दो जबरदस्त हमले किये। एक ही घण्टे में सारी जर्मन ब्रिगेड घेर ली गई और सब जर्मन सिपाहियों को उनके अफसरों के साथ कैदी बना लिया गया। जर्मन अधिकारियों ने नेताजी को घेरकर उन्हें इस कामयाबी पर बधाइयां देनी शुरू कीं। सभी ने आजाद हिन्द फौज की वीरता, रण चातुरी और हिम्मत की सराहना की। फौज के सभी बहादुरों को नेताजी ने "शेर-ए-हिन्द" के पद से सम्मानित किया। इसी दिन से इस बहादुरी की याद में तिरंगे राष्ट्रीय झंडे पर छलांग मारते या कूदते हुये शेर का निशान बनाया गया। आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों और अफसरों की वर्दी में शामिल किये गये बिल्ली या चैन को कूदते हुये शेर वाले झण्डे की शकल दे दी गयी।

—(०)—

१३

नेताजी का पूर्वीय एशिया को प्रस्थान

युरोप में नेताजी आजाद हिन्द फौज का संगठन करने में जिस ढंग से लगे हुए थे, उसी ढंग पर पूर्वीय एशिया में आजाद हिन्द फौज का संगठन आजाद हिन्द संघ के आधीन किया जा रहा था। जनरल मोहनसिंह और उनके साथियों का जापानी अधिकारियों के साथ मत-भेद होने से पूर्वीय एशिया में १९४२ के अन्त में इतनी भीषण स्थिति पैदा हो गई कि आजाद हिन्द फौज को भंग करने तक का एलान कर दिया गया। स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस ने स्थिति को सम्भालने का यत्न किया और जापानी अधिकारियों पर जोर डाला कि वे सुभाष बाबू को जर्मनी से पूर्वीय एशिया लाने की कोशिश करें। अन्यथा हिन्दुस्तान की आजादी के लिये शुरू किये गए आन्दोलन का अस्त-व्यस्त हो जाना निश्चित था। जापानी सरकार के आग्रह पर जर्मन सरकार इसके लिये तय्यार हो गई और सुभाष बाबू अपने जीवन को खतरे में डालकर भी पूर्वीय एशिया आने को तय्यार हो गये। २६ जनवरी १९४३ को स्वतन्त्रता दिवस के समारोह में शामिल होने के लिए जब नेताजी फ्राइज इवडीन क्लिजों के कैम्प में गये, आपकी इच्छा पूर्वीय एशिया के लिए

अपने मित्रों से विदाई लेने की थी, किन्तु इस रहस्य को प्रकट करना भी उचित न था। इसलिये उसको सर्वथा गुप्त रखा गया। कुछ इने-गिने साथी ही इसको जानते थे।

२७ जनवरी सन् १९४३ को नेताजी हालैंड के एक बंदरगाह के लिये विदा हुये। लेकिन, तुरन्त ही आप जर्मनी लौट आये। जर्मन गेस्टापो विभाग को यह पता चल गया कि नेताजी के विदा होने का भेद अंग्रेज खुफिया पुलिस को मालूम हो गया है।

जर्मनी लौटने के बाद आप खुनिरसबुर्क कैम्प का निरीक्षण करने गये। इसी अवसर पर जर्मन ऐस० ऐस० ब्रिगेड और आजाद हिन्द फौज में नकली लड़ाई हुई थी। मार्च १९४३ के पहिले सप्ताह में नेताजी एक बार फिर इस कैम्प में पधारे। इस कैम्प के लिये यह आपकी अन्तिम मुलाकात थी। आप मोटर से वहां गए और कुछ ही मिनट वहां रहकर बर्लिन लौट आये। एक छोटे से भाषण में आपने अपने साथियों से कहा कि "मैं एक जरूरी काम में लगने वाला हूं। इसलिये कुछ दिनों के लिये मैं आपसे दूर रहूंगा।" इन्हीं दिनों में आजाद हिन्द रेडियो से आपने एक भाषण भी ब्राडकास्ट किया था।

दूर रहने के इस संकेत का यह अर्थ लगाना किसी के लिये भी संभव न था कि नेताजी युरोप से पूर्वीय एशिया जाने वाले हैं। नेताजी के साथ जाने वालों को काफी अरसे से औरों से अलग रखा जाता था, जिससे कि उनकी अनुपस्थिति से कोई कुछ अनुमान न लगाने लग जाय।

१. लिजों कैम्प में अव्यवस्था

कैम्प में नेताजी के न पधारने पर सिपाहियों ने अफसरों से पूछना शुरू किया कि वे कहां है और क्यों कैम्प में नहीं पधारते हैं ? कुछ समय तो उनको यह कह कर टाला जाता रहा कि वे युरोप के दौरे पर गए हुए हैं और नया कैम्प खोलने की तय्यारी में लगे हुए हैं। दिन पर दिन यह जिज्ञासा बढ़ती चली गई। तब उनको यह कहा गया कि वे अज्ञात मिशन पर अज्ञात स्थान को गए हुए हैं और बहुत ही अधिक व्यग्र हैं। उनको समझाया गया कि वे अधीर न हों। लेकिन, उनके धैर्य की भी कोई सीमा न थी। नेताजी का कुछ भी पता न चलने पर तरह-तरह की अफवाहें फैलनी शुरू हो गई। कोई कहता कि नेताजी को जर्मनों ने कैद कर लिया है। कोई कहता कि हवाई दुर्घटना के शिकार होकर नेताजी स्वर्ग सिधार गए हैं। कोई कहता कि नेताजी रूसियों से जाकर मिल गए हैं। कोई कहता कि नेताजी तुर्की भाग गए हैं। जितने मुंह उतनी बातें सुनने में आने लगीं। इन अफवाहों से सिपाही और भी अधीर हो उठे। एक दिन उन्होंने अफसरों से कह दिया कि "जब तक हमनेताजी के दर्शन नहीं कर लेंगे, काम पर नहीं जायेंगे।" सिपाहियों के इस निश्चय से स्थिति बहुत गम्भीर हो गई। अफसर कुछ भी तय न कर सके कि क्या किया जाय ? स्थिति का संभालना उनके लिए भारी हो गया। एक ओर रहस्य का खोलना अभीष्ट न था और दूसरी ओर उसको खोले बिना सिपाहियों को सन्तुष्ट कर सकना संभव न था।

स्थिति नाजुक होती चली गई। कैम्प में अव्यवस्था मच गई। कैम्प के कमान अफसर ने श्री ए० सी० एन० नम्बियार को तार दिया।

उस समय वे ही आजाद हिन्द आन्दोलन एवं संगठन के नेता या मुखिया थे। श्री नम्बियार खुनिम्सलुक दौड़े चले आए। आपने कैम्प के अफसरों और सिपाहियों के सामने एक भाषण दिया। आपने कहा कि "दोस्तो! आपको नेताजी की अनुपस्थिति में भी वैसे ही नियन्त्रण एवं अनुशासन में रहना चाहिए, जैसे कि उनकी उपस्थिति में रहते। मुझ पर पूरा भरोसा रखो। अधीर और बेचैन न हो। नेताजी सर्वथा सुरक्षित हैं और किसी अज्ञात स्थान को गए हैं। शीघ्र ही वे आपके बीच में उपस्थित हो जायेंगे। राजनीतिक बुद्धिमत्ता का तकाजा यह नहीं है कि मैं आपके सामने सब कुछ खोलकर रख दूं। मैं यह प्रगट नहीं कर सकता कि वे इस समय कहा हैं? लेकिन, मुझ पर भरोसा करो कि वे सुरक्षित हैं और अपने काम में लगे हुए हैं।"

श्री नम्बियार के इस भाषण पर वे शान्त हो गये, किन्तु सन्तुष्ट नहीं हुए। नेताजी के सम्बन्ध में उनकी चिन्ता दूर नहीं हुई।

२. भेद खुल गया

विशेष ट्रेनिंग के लिए आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियों को पूर्वीय युरोप की ओर भेजा गया। साढ़े तीन मास बाद हालैण्ड में फौज के सिपाहियों को इस भेद का पता चला कि नेताजी पूर्वीय एशिया चले गये हैं। किसी ने भी इसको सच नहीं माना। लेकिन, टोकियो-रेडियो से उनकी गर्जना को सुन लेने पर उन्हें उसमें विश्वास कर लेने को बाध्य होना पड़ गया। नेताजी के जापान सुरक्षित पहुंच जाने पर सबको बहुत सन्तोष और प्रसन्नता हुई। बाद में उन जर्मन नाविकों से भी वे मिले, जो नेताजी की पनडुब्बी के मल्लाह थे। उन्होंने उनका समाधान किया और विस्तार के साथ यात्रा का हाल सुनाया। उन्होंने उनको बताया कि

नेताजी के साथ पांच-छः हिन्दुस्तानी और थे। एक उनमें नेताजी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री आबिदहसन थे और दूसरे रोहतक जिले के एक जाट श्री केवलसिंह थे। युरोपसे विदा होनेसे पहिले नेताजीने अतलान्तिक महासागर की ओर कायम की गई जर्मन रक्षापंक्ति का बारीकी के साथ निरीक्षण और अध्ययन किया था। जिस पनडुब्बी से नेताजी पूर्वीय एशिया के लिये विदा हुए थे, उसके मल्लाह बनने के लिए जर्मन नाविकों में स्पर्धासी मच गई। अनेक युवक जर्मन अफसरों ने इस गौरव को प्राप्त करना चाहा। दुबारा भी जब वे हालैण्ड के एक बन्दरगाह से रवाना होने को थे, तब फिर भेद के खुल जाने के भय से यात्रा एकाएक स्थगित कर दी गई। अन्त में यह उचित समझा गया कि इंग्लैंड के बजाय आप फ्रांस से विदा हों। इसलिये आप बोर्डू बन्दरगाह से इस साहसपूर्ण यात्रा पर विदा हुए। हिन्दुस्तान से जर्मनी पहुंचना इतना खतरनाक न था, जितना कि जर्मनी या युरोप से पूर्वीय एशिया पहुंचना था। सुभाष बाबू ने एक बार फिर अपनी जान की बाजी लगादी और सर हथेली पर रखकर उन्होंने अपने महान् मिशन के लिये एक और अत्यन्त साहसपूर्ण और संकटापन्न कदम उठा ही लिया। बोर्डू से चलने से पहिले भी सुभाषबाबू ने दाढ़ी बढ़ा ली थी। बोर्डू से दक्षिण अफ्रीका के नीचे गुडहोप अन्तरीप को पारकर जर्मन पनडुब्बी हिंद महासागर में पहुंच गई। वहां जापानी पनडुब्बी उपस्थित थी। जर्मन मल्लाहों से विदाई लेकर नेताजी अपने साथियों के साथ जापानी पनडुब्बी पर सवार हो गये। समुद्र में तूफान आया हुआ था। इसलिये रस्सों के सहारे दूसरी पनडुब्बी में सवार होना पड़ा। जापानी पनडुब्बी से पेनांग पहुंच कर वहां से नेताजी सुरक्षित हवाई जहाज से टोकियो पहुंच गये।

———

१४

यूरोपव्यापी दौरा

पूर्वीय एशिया के लिये बिदा होते हुए नेताजी ने श्री ए. सी. ऐन. नम्बियार को अपने स्थान में आजाद हिंद संगठन एवं आन्दोलन का नेता नियुक्त किया। आजाद हिन्द सरकार के कायम किये जाने पर आप उसके मन्त्रिमण्डल में भी लिये गए थे। नेताजी के एशिया के लिये बिदा हो जाने के बाद आजाद हिंद फौज की ओर से युरोपव्यापी दौरे का कार्यक्रम बनाया गया। फौज की अनेक टुकड़ियों को युरोप के भिन्न भिन्न देशों में भेजा गया। आस्ट्रिया, बवेरिया, हालैंड, बेलजियम और फ्रांस के बाद कुछ टुकड़ियां इटली, चैकोस्लोवाकिया और अन्य देशों में भेजी गईं। दौरे में यह अनुभव किया गया कि अंग्रेजों द्वारा पैदा की गई भ्रान्त धारणाओं के कुछ अंशों में दूर कर दिये जाने पर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। उन्होंने देखा कि सभी शहरों के सार्वजनिक पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकें और साहित्य पाया जाता है, जो हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों के बारे में तरह तरह की भ्रान्त एवं मिथ्या धारणायें पैदा करने वाला है। अंग्रेजों द्वारा युरोप में

किये गये प्रचार के अवशेष के रूप में उनका बना रहना असर वाला था।

इन पुस्तकों में क्या रहता था, इसकी थोड़े में जानकारी देनी अप्रासंगिक न होगा। इनमें चित्र अधिक रहते थे और उन चित्रों में हिन्दुस्तानियों के जीवन को बुरी तरह अंकित किया जाता था। उदाहरण के लिये एक चित्र में मां बच्चे को पास में बिठाकर जहाँ खाना बना रही हैं, वहां ही बच्चा टट्टी कर रहा है। दूसरे में एक बूढ़ा आदमी क्षय का बीमार मौत के मुंह में पड़ा सिसकियां ले रहा है। वह जो कपड़े ओढे हुए हैं वे फटकर चीरें हो रहे हैं। आस-पास बैठे हुए लोग हुक्का पी रहे हैं और बीमार के साथ साथ वे भी जहां-तहां थूक रहे हैं। तीसरे में बुढ़िया औरत फटे हुए कपड़ों में नग्नप्राय पानी का घड़ा लिये हुये कुए से घर जा रही हैं। चौथे में पतले- बले पीले पड़े हुए बच्चों को गन्दी मोरियों के कीचड़ में नंगा खेलते हुए दिखाया गया हैं। पांचवें में एक गोरे साहब के पीछे भीख मांगते हुए बच्चों व स्त्रियों की भीड़ भागती हुई दिखाई गई है। साहब उनको धिक्कारता और जूते से ठुकराता है, तो भी वे बख्शीस मांगने के लिये उसके पीछे पड़े हुए हैं। छठे में सपेरे का खेल, सातवें में मदारी का खेल और आठवें में हिन्दू मुस्लिम दंगों तक को अंकित किया गया था। देसी राजाओं के साथ गोरों के शिकार खेलने और भिखारियों के उनसे भीख मांगने आदि के चित्रों को भी खूब प्रधानता दी गई थी। हिन्दुस्तान और यहां के लोगों के बारे में सही नकशा खींचने वाले चित्रों का उनमें दीख पड़ना संभव न था। इन चित्रों से अंग्रेज युरोप में यह असर पैदा करना चाहते थे कि कैसे पिछड़े

हुए, अशिक्षित, असंस्कृत और अज्ञान में फंसे हुए लोगों को शिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाकर उनका उद्धार करने में हिन्दुस्तान में अंग्रेज लोग लगे हुए हैं। हिन्दुस्तान में अपने राज्य या साम्राज्य के पक्ष में लोकमत तय्यार करने का काम इस ढंग से किया जा रहा था।

इस जहरीले प्रचार के कुप्रभाव को दूर करनेमें आजाद हिन्द फौज वाले लगे हुए थे। युरोप के भिन्न भिन्न देशों में किये गये दौरे का उद्देश्य नेताजी का संदेश सुनाना और इस असर को जड़-मूल से नष्ट करना था। जहां भी कहीं वे गये लोगोने उनका हार्दिक स्वागत किया। उनके नाम और काम का लोगो को पहिले ही परिचय मिल चुका था। लोगों ने हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में जो धारणायें बनाई हुई थीं, इन नौजवानों को जब उनके सर्वथा विपरीत देखा, तब , कुछ ने तो यह विश्वास ही न किया कि ये हिन्दुस्तानी हैं। उनको बताना पड़ता था कि हिन्दुस्तान का असली चित्र उससे सर्वथा भिन्न है, जो उन्होंने अपने दिमाग में बना रखा है। आजाद हिन्द फौज ने लोगों को बताया कि हिन्दुस्तान एक महान राष्ट्र है, जिसकी अपनी संस्कृति और सभ्यता बहुत पुरानी और बहुत शानदार है। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दुस्तान स्वेच्छा से अंग्रेजों के आधीन नहीं है, वल्कि वह स्वतंत्र एवं स्वाधीन होने के लिये निरन्तर संघर्ष करने में लगा हुआ है और वह शीघ्र ही विदेशियों को अपने यहां से बाहर कर सर्वथा स्वतन्त्र होने वाला है। ये लोग जहां भी जाते, वहां भाषण देते, सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन द्वारा प्रकाशित साहित्य बांटते , लोगों के सम्पर्क में आते और उनके सामने हिन्दुस्तान का सही चित्र पेश करने की कोशिश करते। गान्धी, टैगौर, इकबाल, सुभाष और नेहरू के हिन्दुस्तान को,

उसकी महान सभ्यता को और उसकी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के इतिहास को वे युरोप के लोगों के सामने उपस्थित करते। इसी आशय के चित्र उन द्वारा बांटी गई पुस्तकों और पुस्तकाओं में रहते थे। फ्राइज इण्डीन पत्रिका की हजारों प्रतियां भी लोगों में बांटी जाती थी। यह सारा साहित्य जर्मन और इंग्लिश के अलावा युरोप की अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित किया गया था। युरोप के लोगों की आंखें खुल गई और उनको पता चल गया कि हिन्दुस्तान वास्तव में क्या है? हिन्दुस्तानियों के प्रति उनकी मनोवृत्ति और व्यवहार भी एक दम बदल गया। जिनको वे जंगली पशु मानकर नफरत की निगाह से देखा करते थे, उनको वे सभ्य नागरिक मानकर सम्मान की दृष्टि से देखने लग गये। हिन्दुस्तान के लिए उनके हृदय में आदर और उसकी आजादी की लड़ाई के लिए सहानुभूति भी पैदा हो गई। उनके घरों में नेताजी का फोटो सम्मान के साथ लगाया जाने लगा। कितना बड़ा यह परिवर्तन था! आजाद हिंद फौज की यह कामयाबी कुछ कम न थी।

१. हालैंड में

आस्ट्रिया और बवेरिया का साधारण-सा दौरा करने के बाद आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियां हालैंड गई। पहली और तीसरी बटालियन हालैंड में रही और दूसरी बटालियन ने टेक्सल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। जब उन बटालियनों ने हालैंड की राजधानी अमस्टर्डम में प्रवेश किया, तब यह समाचार सारे शहर में बिजली की तरह फैल गया। पहले तो एकाएक लोग घबरा से गये। वे हिन्दुस्तानियों को असभ्य और अशिक्षित समझे हुए थे। ऐसे लोगो का अपने शहर में आना उनको पसन्द न था। वे जानते थे कि सुभाष बाबू ने हिन्दुस्तान

की आजादी के लिये एक नया मोर्चा कायम करके आजाद हिन्द फौज का संगठन किया है, फिर भी उनके दिलों पर अंग्रेजी प्रचार तथा आंदोलन काफी असर किये हुए था। इसलिये उन्होंने उनका स्वागत नहीं किया। लेकिन, शीघ्र ही नकशा बदल गया। इन फौजियों ने अपने व्यवहार से उनकी इस भ्रान्त धारणा को दूर कर दिया। कुछ प्रदेश की शासन व्यवस्था आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को सौंप दी गई। इस प्रकार जब वहां के लोग सीधे उनके सम्पर्क में आये, तब उनको पता चला कि वे कैसी भ्रान्त धारणा में पड़े हुए थे। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दुस्तानी भी कितने सभ्य और सुसंस्कृत हैं? उन्होंने सबको बड़े प्रेम और उत्साह के साथ विदा दी। फल, मिठाइयां तथा अन्य अनेक वस्तुएं उपहार में दी गईं।

२. फ्रांस व बैलजियम में

हालैण्ड और टैक्सल से आजाद हिन्द फौज की तीनों बटालियनों को फ्रांस भेजा गया वहां उनको भेजने के दो उद्देश्य थे। एक हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में ठीक ठीक प्रचार करना और दूसरा अतलान्तिक तट पर बनाई गई जर्मन रक्षा-पंक्ति पर उनको तैनात कर युद्ध के सम्बन्ध में नयी ट्रेनिंग देना। प्रचार के उद्देश्य से फौज के सिपाहियों ने फ्रांस के सभी बड़े बड़े शहरों का दौरा किया। लोगों पर इस दौरे का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति पैदा हो गयी। अपने दौरे में आजाद हिन्द फौजियों ने खेलों की प्रतिस्पर्धा अर्थात टूर्नामेंटों में भी भाग लिया। हाकी, फुटबाल, वालीबाल आदि खेलों में उन्होंने नाम पैदा किया। उनके खेल देखने के लिये लोग बहुत उत्सुकता से आते और काफी

संख्या में इकट्ठे होते थे। बोर्डू में रहकर फौजियों ने रक्षा-पंक्ति का निरीक्षण किया और ट्रेनिंग की।

फ्रांस में रहते हुए आजाद हिन्द फौज के कुछ सिपाही बेलजियम भी जाते-आते थे। बाद में वहां उनको एक स्वास्थ्यप्रद स्थान सौंप दिया गया था। वहां रहकर उन्होंने अपने प्रचार का भी काम किया और स्वदेश की आजादी के मिशन के लिए वहां के लोगों की सहानुभूति प्राप्त की।

३. इटली में

१९४४ के शुरू में मित्रसेनायें रोम के दक्षिण तक पहुंच गई थीं। मोर्चे के सामने की पंक्ति में हिन्दुस्तानी सिपाहियों को रखा जाता था। दुश्मन की तोपों का शिकार बनाने के लिये ही तो उनको फौज में भरती किया गया था। आजाद हिन्द फौज के सिपाही अंग्रेजों की इस चाल से भली प्रकार परिचित थे और वे जानते थे कि किस प्रकार हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज अपने दुश्मन की तोपों की खुराक बनाने के लिये सामने रखते हैं। इस स्थिति से लाभ उठाने के लिये आजाद हिन्द फौज की कुछ टुकड़ियों को इटली भेजा गया। मित्र सेनायें कैसिनो प्रदेश तक आगे बढ़ आई थीं। आजाद हिन्द फौज के बीर योद्धा इस क्षेत्र में फैल गये और उन्होंने अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तानियों के साथ सीधा सम्पर्क कायम कर हजारों पर्चे उनमें बांटे। इनमें नेताजी के चित्र, हिन्दुस्तान की आजादी के लिये स्वदेश में, युरोप में और पूर्वीय एशिया में की जाने वाली तय्यारियों का वर्णन और उस अंग्रेजी साम्राज्यवाद के लिये खुदा के नाम पर खून न बहाने के लिये अपीलें रहती थीं, जिसने हमारी

मातृ-भूमि को गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। तोपों और हवाई जहाजों से भी ये परचे बरसाये जाते थे। लाउड स्पीकरों से भी ये अपीलें की जाती थीं। कुछ फौजी भेष बदल कर अंग्रेज सेना में पहुंच जाते थे और अपना काम करके लौट आया करते थे।

सर हथेली पर रखकर किया गया यह प्रचार व्यर्थ नहीं गया। इसका जादू का-सा प्रभाव हुआ। बहुत से फौजी अंग्रेजों का साथ छोड़कर आजाद हिन्द फौज में आकर मिल गये, और उनके स्थान में अमेरिकन तथा अंग्रेज सैनिकों को जर्मन तोपों की खुराक बनना पड़ गया। इस प्रकार कितने ही हिन्दुस्तानियों के जीवन की रक्षा हो गई। लेकिन, अंग्रेजों का विश्वास हिन्दुस्तानी फौजों पर इतना न रहा। सम्भवतया इसीलिये नार्मंडी से की जाने वाली चढ़ाई का उस समय विचार छोड़ दिया गया और हिन्दुस्तानी फौजों से युरोप की लड़ाई में इतना काम नहीं लिया गया। जो भी हो, आजाद हिन्द फौज ने अपना काम कर दिखाया और अंग्रेज सेनापतियों को काफी चक्कर में डाल दिया।

४. फ्रांस से जर्मनी को

मई १६४४ में इन फौजियों को हटली से हटाकर फ्रांस भेज दिया गया और ये बोर्डू में आकर अपने साथियों से मिल गये। अन्त में ६ जून को मित्र सेनाओं ने नार्मंडी से फ्रांस पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में हिन्दुस्तानी फौजों से काम नहीं लिया गया था। आजाद हिन्द फौज को फ्रांस से जर्मनी लौटने का आदेश दिया गया। दक्षिण फ्रांस से लौटना इतना आसान न था। मित्रों के हवाई जहाज निरन्तर गोलाबारी करने में लगे हुए थे। रेलवे स्टेशन, रेलवे लाइन,

सड़कें, पुल आदि सभी नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये थे। सारा फ्रांस भी विद्रोही बन चुका था। जर्मनों और उनका साथ देने वालों की जान के लाले पड़ गये थे। सभी शहरों, गांवों और घरों तक में विद्रोह की लाल लपटें फैल गई थीं। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उसमें जूझ रहे थे। अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता के प्राप्त करने का उनके लिये यह अलभ्य अवसर था। इस अस्त-व्यस्त अवस्था को पार करके आजाद हिन्द फौज को जर्मनी पहुंचना था। कदम कदम पर कठिनाइयां पहाड़ बन रही थीं और रास्ता सूझना भी मुश्किल हो रहा था। उनको सदर मुकाम से यह हुक्म मिला था कि वे संघर्ष से अलग रहकर शान्ति से अपना मार्ग तय करें। जब उन्होंने देखा कि फ्रांसीसी गुरिल्ला उनके रास्ते में भी अड़चनें पैदा कर रहे हैं, तब उनके कमान अफसर ने एक ऐलान जारी किया। उसमें कहा गया था कि "फ्रांसीसियोंके साथ हमारा कोई द्वेष या विरोध नहीं है। हमारी अपनी अस्थायी सरकार कायम है। उसने केवल इंग्लैंड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की है। जहाँ तक फ्रांसीसी देशभक्तों का सम्बन्ध है, हमारी सहानुभूति उनके साथ है। इसलिये हमारे जर्मनी लौटने के मार्ग में कोई बाधा नहीं डाली जानी चाहिये।" इसी अपील में यह भी कहा गया था कि ऐसी स्थिति में यदि हम पर किसी फ्रेंचने एक भी गोली चलाई, तो एक गोली का जवाब दस गोलियों से दिया जायगा। इसलिये इसमें आपस का ही भला हैं कि आप हमारे जर्मनी जाने के मार्ग में कोई बाधा या अड़चन पैदा न करें।

इस अपील पर शुरू में तो ध्यान न दिया गया, और फ्रेंच देशभक्तों के साथ आजाद हिन्द फौज की कई मुठभेड़ें हुईं। उनका वीरता के

साथ सामना किया गया और एक गोली का जवाब गोलियों की वर्षा से दिया गया। अन्त में फ्राँसीसी समझ गये कि इन हिन्दुस्तानियों से लड़ाई मोल लेना व्यर्थ है। यहां यह लिखना भी अप्रासंगिक न होगा कि इनके साथ लगभग दो सौ जर्मन सिपाही और बच्चे भी थे, जिनको वे अपनी संरक्षता में जर्मनी ले जा रहे थे। उनसे कहा गया कि यदि वे सुरक्षित जर्मनी पहुंचना चाहते हैं, तो उन्हें उन जर्मन स्त्रियों और बच्चों को फ्रांसीसियों को सौंप देना चाहिये। लेकिन, उन्होंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया और कह दिया कि यह उनकी प्रतिष्ठा के सर्वथा विरुद्ध है। उनको रास्ते में अंग्रेज और अमेरिकन पैराशूटियों का भी सामना करना पड़ा। दूसरी बटालियन की पांचवीं कम्पनी को भीषण प्रत्याक्रमण करनेके लिये लाचार होना पड़ा। ५ घण्टों तक भीषण लड़ाई हुई। इसी बीच में आजाद हिन्द फौज की और भी टुकड़ियां आ पहुंचीं। मित्र सेना के छक्के छूट गये। उनके ११ सिपाही मारे गये और २० घायल हुए। आजाद हिन्द फौज का सिर्फ एक सिपाही मरा और एक अफसर घायल हुआ। रास्ते में इस प्रकार की कई मुठभेड़े मित्र सेना के साथ हुईं और आजाद हिंद फौज वीरता के साथ अपना रास्ता साफ करती चली गई।

डिजौन के पास मित्र सेना के साथ एक और भयानक मुठभेड़ हुई। यह मित्र सेना मार्सलीज से जर्मन सेना की ओर बढ़ रही थी। एक ओर अमेरिकन तथा फ्रांसीसी सेना थी और दूसरी ओर आजाद हिंद फौजथी। आधी आजाद हिन्द फौज अमेरिकन टैंक सेना और फ्रांसीसी पदाति सेना ने घेर लिया था। लेकिन बाकी सेना ने बाहर से जोरका हमला बोल दिया और भीतरसे घिरी हुई सेनाने जोर का प्रत्याक-

मचा किया। इस समय दिखाई गई वीरता के लिए आजाद हिन्द सरकार और जर्मन सरकार दोनों ने उन वीरों का सम्मान किया।

जर्मनी के सीमा-प्रदेश पर पहुंचते न पहुंचते आजाद हिन्द फौज को अंग्रेज-फ्रेंच-अमेरिकन सेनाओं के संयुक्त हमले का सामना करना पड़ा। यहां हाथापाई की-सी लड़ाई हुई। मित्र सेना को बहुत हानि झेलनी पड़ी। उनके अनेक सैनिक मारे गये और घायल हुए। बहुत से टैंक भी बेकाम हो गये। आजाद हिन्द फौज के भी अनेक सैनिक खेत रहे। पर, उसकी हानि अपेक्षाकृत कम हुई।

इस प्रकार विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए आजाद हिन्द फौज के वीर सिपाही मार्च १९४५ में जर्मनी पहुंच गये। कुछ टुकड़ियां उत्तर-पश्चिम जर्मनी में रहीं, कुछ लुनिग्सबुर्ग चली गईं और कुछ को हंगरी के आस-पास रखा गया।

१५

वीरों का सम्मान

दक्षिण फ्रांस से जर्मनी लौटते हुए आजाद हिन्द फौज के मृत तथा घायल हुए सैनिकों की संख्या केवल दो सौ थी। अपनी बहादुरी, वीरता, ईमानदारी का परिचय देने वालोंकी संख्या और भी अधिक थी। आजाद हिन्द संघ के प्रधान और आजाद हिन्द सरकार के मंत्री श्री ए० सी० ऐन० नम्बियार ने इन सबके सम्बन्ध में विचार किया और सबको विशेष रूप से सम्मानित करने का निश्चयकिया गया जर्मन सरकार ने भी कइयों को पदक आदि देकर सम्मानित किया। आजाद हिंद फौजके निम्न अफसरों को 'वीर-ए-हिन्द" के पदक प्रदान किये गये।

(१) लेफ्टिनेण्ट गुरबचन सिंह- बागोबाल गांव, पटियाला।

(२) लेफ्टिनेण्ट म० इसाक—पटना शहर।

(३) लेफ्टिनेण्ट शेरदिल खां—झेलम (पंजाब)।

(४) लेफ्टिनेण्ट गुरुमुख सिंह—अमृतसर (पंजाब)।

(५) लेफ्टिनेण्ट अल्लाबदखां।

(६) लेफ्टिनेण्ट इन्दरसिंह — जलन्धर।

(७) लैफ्टिनेण्ट मुहम्मद जामिल-रजब (दिल्ली) ।

(८) „ डाक्टर बोस ।

(९) „ जसबन्तसिंह विन्द्रा-रावलपिण्डी ।

दक्षिण फ्रांस के बिजौर स्थान में हुई लड़ाई में आजाद हिन्द फौज ने अमेरिकन सेनाओं और फ्रांसीसियों को बुरी तरह छकाया था। यहां वीरता दिखाने वाले सत्तर बहादुरों को "वीर-ए-हिन्द" पदक प्रदान किया गया था। जर्मन सरकार ने इनको 'आयरन क्रास, के पदक से सम्मानित किया था। उनमें से कुछ अफसरों के नाम निम्नलिखित हैं।

(१) सब आफिसर पद्मसिंह रावत-गढ़वाल ।

(२) „ „ बचासिंह जाफरवल-सियालकोट ।

(३) „ „ सुलतान अहमद-रावलपिण्डी ।

(४) „ „ अबुल रशीद, रावलपिण्डी ।

(५) „ „ आराम बख्शी ।

(६) „ „ जागीरसिंह ।

(७) „ „ अमरसिंह खाप्रोली (गढ़वाल) ।

(८) „ „ महम्मद खां रावलपिंडी ।

(९) नायक गोपालसिंह लुधियाना ।

(१०) सब आफिस रप्रतापराव देसाई ।

(११) „ „ कालुराम कोलयडे ।

अंग्रेज-अमेरिकन पैराशूटियों के साथ हुई लड़ाई में सब-आफिसर ज्ञानसिंह ने नाम पैदा किया था। वह सियालकोट का रहने वाला था। उसको जंग-ए-बहादुर और तगमा-ए-बहादुरी के पदकों से सम्मानित किया गया था। सब आफिसर ज्ञानसिंह ने



‘‘फ्राइज इण्डीन बिजों’’ के पदक और बिल्ले, जिनसे फौजियों को सम्मानित किया जाता था।

लायलपुर के सन्तपुरा के सब-आफिसर बलवन्तसिंह और गढ़वाल के सब-आफिसर पदमसिंह के साथ फ्रांस के फुफ्फी गांव में भी अपने जौहर दिखाकर बहादुरी का परिचय दिया था। वहां आजाद हिन्द फौज को दुश्मन के टैंकों का सामना करना पड़ा था और उसने उसके छक्के छुड़ा दिये थे। ज्ञानसिंह वहां घायल हो गया था। उसके दोनों साथी भी वहां घायल होगये थे। इसपर भी वे अपनी सारी बटालियन को इस हमले से सुरक्षित बचा लाये थे। उनको आजाद हिन्द सरकार ने 'वीर-ए-हिन्द' और जर्मन सरकार ने आयरन क्रास तथा एक और पदक दे कर सम्मानितकिया था।

इस प्रकार आजाद हिन्द फौज ने वीर जर्मनों पर भी अपनी वीरता की छाप जमा दी थी।

१६

"आजाद हिन्द फौज" की गिरफ्तारी

आजाद हिन्द फौज के फ्रांस से जर्मनी में पहुंचने के एक माह के भीतर ही मित्र सेनायें जर्मनी की सीमा पर पहुंच गई। सब ओर से उसको रसियन, अमेरिकन, फ्रेंच और अंगरेज सेनाओं ने घेर लिया था। सब जर्मन शहरों और आबादियों पर अमेरिकन हवाई जंगी जहाज आग बरसा रहे थे। जर्मन सेनाओं का सभी युद्ध-क्षेत्रों पर या तो सफाया किया जा रहा था अथवा उनको गिरफ्तार किया जा रहा था। पराजय का भूत उनका पीछा कर रहा था। इस विपत्ति में आजाद हिन्द फौज के सामने भी संकट की घटा नाच रही थी। आजाद हिन्द के फौजी अपने घरों से हजारों मील की दूरी पर विदेश में रह रहे थे। उनके नेताजी भी उनसे बहुत दूर थे।

मित्र सेनाओं ने जर्मनी का दक्षिण-पश्चिमी हिस्सा अप्रैल १९४५ में ही अपने कब्जे में कर लिया था। उस पर कब्जा करते ही यह ऐलान जारी किया गया था कि कोई भी जर्मन किसी विदेशी को अपने यहां पनाह न दे। इसकी अवहेलना करने पर फांसी की सजा देनेका भी

ऐलान किया गया था। इस पर भी जर्मन आजाद हिन्द फौज वालों को अधिक से अधिक सहायता देने के लिये तत्पर थे। अपनी जान को जोखम में डाल कर भी उनको पनाह देकर भोजन तथा वस्त्र से मदद दे रहे थे। एक न एक दिन उनका गिरफ्तार किया जाना निश्चित था। आजाद हिन्द फौज के वीर सिपाहियों को गिरफ्तार किये जाने की अपेक्षा आत्महत्या करना अधिक उचित प्रतीत हुआ। इस स्थिति में मित्र सेनाओं के साथ लड़ाई मोल लेना बेकार था। लड़ाई में उनका सर्वनाश निश्चित था। जीवित अवस्था में गिरफ्तार किये जाने पर वे यह समझते थे कि उनको घोर यातनायें झेलनी पड़ेंगी और उनके घर वालों को भी तंग किया जायगा। एक और भी दृष्टिकोण था। आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों की संख्या भी इतनी न थी कि वे सब किसी एक ही स्थान पर जमा होकर कोई मोर्चा कायम करते और साधारण हथियारों से दुश्मन की यांत्रिक सेना का मुकाबला करते, उसके टैंकों, हवाई जहाजों और गोलाबारी का सामना कर सकना प्रायः असम्भव ही था। जो थोड़ी-बहुत सेना थी, वह भी एक स्थान पर जमा न थी। कई स्थानों पर बंटी हुई थी।

इस निराशापूर्ण स्थिति में कुछ ने तो आत्महत्या कर ही ली। दुश्मन के हाथों गिरफ्तार किये जाने की कल्पना भी उनके लिये असह्य थी। श्री ए. सी. एन. नाम्बियार को इन आत्महत्याओं का पता चला। उसने तुरन्त सब टुकड़ियों के नाम एक सन्देश जारी किया। सब ओर उसको भेजा गया। उसमें कहा गया था कि:—

"दोस्तो! मुझे यह जान कर बहुत दुख हुआ है कि आजाद हिन्द फौज के कुछ सिपाही आत्महत्या करने पर उतारु हैं। इसमें सन्देह

नहीं कि आज हमको सर्वथा विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है और हमारा भविष्य भी अन्धकारमय है। लेकिन, तुमको यह नहीं भूलना चाहिए कि तुम सैनिक हो और आत्महत्या करना सैनिकों की प्रतिष्ठा के सर्वथा विपरीत है। कायर, डरपोक और कठिनाइयों तथा बलिदान से घबराने वाले ही आत्महत्या करते हैं। आप सब बहादुर हैं और गर्वीली माँ के बहादुर सपूत हैं। आपने बहुत बहादुरी का परिचय दिया और बहुत कुछ किया है। लेकिन, अभी तो आपको बहुत कुछ करना है। आप भारतमाता को स्वतन्त्र और स्वाधीन करने में लगे हुए हो। वह लड़ाई अभी समाप्त नहीं हुई है। उसको तुम्हें बराबर जारी रखना है। अभी तक वह स्वतन्त्र या स्वाधीन नहीं हुई है। युरोप में आपने आजादी की जिस लड़ाई का सूत्रपात किया हैं, उसको जारी रखने के लिये आपका हिन्दुस्तान पहुंचना आवश्यक है। यह आपका ऐसा कर्तव्य है, जिसकी कि आपको उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मेरे दोस्तो! हिन्दुस्तान पहुंचने की तैयारी करो। फाँसी के तख्ते पर भले ही वहां आपको क्यों न झूलना पड़े, भले ही आपको जेल की काल कोठरियों में क्यों न बन्द होना पड़े और तरह तरह की यातनायें ही क्यों न झेलनी पड़ें; किन्तु इस लड़ाई को तो जारी रखना ही होगा और उसको जीवित भी रखना होगा। दोस्तो! आपका जीवन बहुत कीमती है। आत्महत्या करके उसको नष्ट मत करो। ऐसा करोगे, तो नेताजी के नाम को धब्बा लगाओगे। यदि नेताजी ने मुझ से आप लोगों की आत्महत्या का कारण पूछा, तो मैं उनको क्या उत्तर दूंगा?"

आजाद् हिन्द फौजियों पर इसका जादू का-सा असर हुआ! इसके बाद आत्महत्या की कोई घटना नहीं घटी। उन्होंने शत्रु-सेनाओं का मुकाबला करने के सम्बन्ध में भी विचार किया। लेकिन, उनकी संख्या बहुत कम थी और उनके पास युद्ध-सामग्री भी बहुत कम थी। इस स्थिति में उनका गिरफ्तार किया जाना निश्चित था। एक-एक करके उनकी टुकड़ियां गिरफ्तार की जाने लगीं। कुछ को पश्चिमी मोर्चे की ओर करीब एक हजार फ्रांसीसी फौजों ने गिरफ्तार किया था। कुछ को अमेरिकन और अंग्रेज फौजों ने भी गिरफ्तार किया। हंगरी तथा पूर्वीय युरोप के अन्य देशों में जो थे, वे सोवियत फौजों द्वारा गिरफ्तार किये गये थे। अमेरिकनों ने उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। जिनको उन्होंने गिरफ्तार किया था, हालांकि उनकी संख्या कुछ अधिक नहीं थी, उनको उन्होंने सब तरह की सहूलियतें दीं। बड़े चाव के साथ उन्होंने उनसे आजाद हिन्द आन्दोलन का सारा इतिहास सुना और नेताजी के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इस आन्दोलन के साथ सहसा उनकी सहानुभूति पैदा हो गई। लेकिन, बाद में उनको अंग्रेजी फौजों के सुपुर्द कर दिया गया। उनमें से कुछ को इंग्लैंड भेज दिया गया और लगभग दो हजार को इटली के टोरेण्टो प्रदेश के नजरबन्द कैम्पों में रखा गया। पूर्वीय युरोप में जो फौजी सोवियत रूसियों के हाथों गिरफ्तार किये गये थे, उनका यह खयाल था कि सोवियत रूस गरीबों, पराधीनों और पद-दलितों का हिमायती है। इसलिये वे उनसे भले व्यवहार की आशा रखते थे। लेकिन, रूसियों ने न तो उनको पनाह दी और न संरक्षण ही दिया, बल्कि बन्दी बना लिया। उन्होंने उनको साफ ही कह दिया कि

चूंकि अमेरिकन और अंग्रेज उनके दोस्त हैं, इसलिये वे उनके दुश्मनों की कुछ भी सहायता नहीं कर सकते और वे उनको जल्दी ही अंग्रेजों के हाथों में सौंप देंगे। सोवियत अफसरों के साथ की गई सारी बातचीत व्यर्थ गई। उनको दिये गये आवेदन-पत्र भी बेकार गये। गांधीजी और नेहरूजी के नाम पर की गई अपीलों पर भी उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। वे बार बार यही कहते रहे कि अंग्रेजों और अमेरिकनों के दुश्मनों की वे कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। उन सबको अंग्रेजों के हाथों में सौंप दिया गया और बवेरिया के म्यूनिच शहर में भेज दिया गया। वहां से वे इंग्लैण्ड ले जाये गये, जहां कि उनको अपने अन्य साथियों के साथ नजरबन्द कैम्प में बंद कर दिया गया।

आजाद हिंद फौज के जो लोग जर्मनी के पश्चिम में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों द्वारा गिरफ्तार किये गये थे, उनके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया गया। आजाद हिंद फौज के अधिकतर फौजी इसी प्रदेश में, जर्मनी के दक्षिण-पश्चिम में, वैली और सैलिसबरी में थे, जो ३० अप्रैल १९४५ को गिरफ्तार किये गये थे। इनको एक नजरबन्द कैंप में रखा गया। बाद में सबको एक सिनेमा हाल में बंद कर दिया गया। उसमें एक हजार से कुछ अधिक ही बंदी बंद किये गये थे। इसमें दो सौ जर्मन स्त्री-बच्चे भी थे। दो-तीन दिन तक उनको भीतर ही बंद रखा गया। उनको न तो भोजन दिया गया और न जीवनोपयोगी अन्य सामग्री दी गई। कुछ दिन बाद अंग्रेजों ने उनको फ्रांसीसियों के सिपुर्द कर दिया। फ्रांसीसियों का व्यवहार उनके साथ अत्यन्त हृदयहीन था। वे उनको तरह तरह की यातनायें देते रहते थे। उनके विरुद्ध अंग्रेज अधिकारियों के पास की गई अपीलों पर कुछ भी ध्यान न दिया

गया था। दो मास तक उनको इसी नरक में रहना पड़ा। वहांकी नारकीय यातनाओं का अनुभव उनके लिये बिलकुल नया था। वह इतना कठोर था कि उसे अमानुष कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। पशुओं की तरह उनको बैरकों में धकेल दिया जाता और कई कई दिनों तक ठीक तरह भोजन भी दिया नहीं जाता था। उनसे एक-एक करके बयान लिये जाते और एक एक को पांच-पांच छ:-छ: फ्रांसीसी सिपाही घेर लेते। उनको इतना पीटा जाता कि वे बेहोश हो जाते। कभी कभी उनको अंधेरी कोठरियों और गंदी नालियों में धकेल दिया जाता। फ्रेंच लोगों को उनके विरुद्ध भड़काया जाता और कहा जाता कि वे जर्मनों के हाथ का खिलौना हैं। लोग उत्तेजित होकर उनको पत्थरों से मारते और तरह तरह से उनको तंग करते। जब इस सबकी शिकायत की जाती, तो कहा जाता कि यह सब अंग्रेज अधिकारियों के आदेश से किया जा रहा है। कभी कभी इन शिकायतों पर फ्रांसीसी आपे से बाहर होकर उन पर गोलियों की बौछार तक कर डालते। इस प्रकार बहुतों को वहां अपने जीवन से हाथ धोना पड़ गया। रामचन्द्र, दिलीपसिंह, चिरागदीन, वलीमुहम्मद, मजहर अली और सावन्तसिंह उनमें मुख्य थे। लगभग इकत्तीस को इस प्रकार गोली का निशाना बनाया गया।

दो मास तक इन रौरव यातनाओं को भोगने के बाद आजाद फौजियों को इंग्लैंड भेज दिया गया। रास्ते के लिए उनको बहुत ही थोड़ा राशन दिया गया। उनको प्राय: भूखे पेट रहना पड़ा। जहां कहीं वे जर्मन या डच आबादी में से गुजरते, तो वहां के लोग उनको चोरी से खाने पीने का सामान दे देते। उनकी उनके प्रति सहज सहानुभूति थी। समुद्र तट पर लाकर उन्हें अंग्रेजों को सौंप दिया

गया और इंग्लैंड लाने के बाद उनको नार्फीक के नजरबन्द कैम्प में बन्द कर दिया गया।

जर्मनी पर मित्र-सेनाओं का पूरा अधिकार हो जाने पर अंग्रेजों के हुक्म पर सेण्ट्राले फ्राइज इण्डीन के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। इनमें से श्री ए.सी.ऐन. नम्बियार, श्री गिरिजा मुकर्जी, डाक्टर बैनर्जी, श्री प्रोमोद सेनगुप्ता श्री ऐस० सेन गुप्ता, श्री आर० ऐन० व्यास, डाक्टर कर्तारास, डा० हबीबुलरहमान, डा० ए० आर० मल्लिक, श्री ऐन० के० मूर्ति, श्री एम० वी० राव, श्री एस० के० सावन्त के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री ए० सी० एन० नम्बियार और श्री एम० बी० राव को पेरिस के बेसाइल जेल में रखा गया। १६४२ की फ्रेंच क्रान्ति के दिनों से यह जेल ख्याति पा चुका था। बाकी को हरफोर्ड जर्मनी के जेलखाने में अलग अलग काल कोठरियों में रखा गया। इनके साथ किया गया व्यवहार सर्वथा असन्तोषजनक था। भोजन बहुत खराब दिया जाता था। ३०० ग्राम रोटी और बिना दूध व शक्कर के एक प्याला काफी दी जाती थी। महीनों उनको इसी हालत में रखा गया। उनके आवेदनों पर कुछ भी ध्यान न दिया गया। १६४६ के मध्य में रिहा करने पर भी अनेकों को अनेक स्थानों पर नजरबन्द कर दिया गया। श्री नम्बियार और उनके कुछ साथी जर्मनी के पश्चिम में नारिगम में नजरबन्द कर दिये गये।

सितम्बर १६४६ में पेरिस में विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन होने के समय जब श्री बी० के० कृष्ण मैनन रूस के परराष्ट्र मन्त्री श्री मोलोटोव से मिलने गये थे, तब श्री गिरिजा मुकर्जी वहां आकर श्री मैनन से मिले थे। वहां श्री मुकर्जी ने एक वक्तव्य में यह ऐलान किया था कि

यदि नार्दिगम में नज़रबन्द किये गये आज़ाद हिन्द संघ के लोगों की कुछ सुध न ली गई और उनको आवश्यक सहायता न पहुंचाई गई, तो उनमें से अनेक सरदी की मौसम में जान से हाथ धो बैठेंगे। उनकी रिहाई के लिये किये गये आन्दोलन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। सरदार अजीतसिंह एक अस्पताल में इतने बीमार बताये जाते हैं कि उनकी स्थिति मरणासन्न है। एक बार तो उनके स्वर्गवास होने की अफवाह भी उड़ चुकी है। लेकिन, श्री ऐस० सेनगुप्ता और उनके कुछ साथियों के सिवाय औरों को अभी स्वदेश लौटने की सुविधा नहीं दी गयी है।

———

१७

इंग्लैण्ड के नजरबन्द कैम्प में

आजाद हिन्द फौजके सैनिकों को कई दलों में इंग्लैण्ड लाया गया था। पहिले दल को बस्ती से बहुत दूर एक ऐसे कैम्प में रखा गया था, जो जंगल में बना हुआ था, जिसको चारों ओर से कंटीली तारों से घेरा हुआ था और जहाँ बाहरी दुनिया से सम्बन्ध रखने के कुछ भी साधन उपलब्ध न थे। उसके वहां पहुंचने के तुरन्त बाद ही 'फील्ड सिक्यूरिटी यूनिट के आदमी पहुंच गये और उन्होंने उनसे जांच-पड़ताल और पूछ-ताछ का काम शुरू कर दिया। साथ ही उनको इस बुरी तरह तंग करना शुरू कर दिया कि उन यातनाओं की कल्पना तक कर सकना सम्भव न था। उनके दिमाग में आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में न मालूम कैसे विचार भर दिये गये थे। उन्होंने उनको अपना जानी दुश्मन मान लिया था। उनके बारे में जांच-पड़ताल भी क्या करने को थी? वे किसी गुप्त षड़यन्त्र में तो लगे हुए न थे और न वे लुकछिपकर चोरी से इंग्लैण्ड ही आये थे। युरोप में उन्होंने जो कुछ भी किया था डंकेकी चोट किया था और इंग्लैण्ड मेंउनको कैदी बनाकर नजरबन्द करके

रखने के लिये ही लाया गया था। युद्ध के समाप्त हो जाने से उनके बारे में कोई और सन्देह करने का भी कोई कारण न था।

जांच-पड़ताल का यह काम पूछ-ताछ से शुरू किया गया था। गुप्त भेद जानने के लिये उन पर नाना प्रकार की ज्यादतियाँ भी की गईं। प्रायः सभी को अलग-अलग रखा गया और कुछ को अंधेरी कोठरियों में भी बन्द रखा गया। कुछ दिन उनको भूखा रख कर तंग किया गया। दांत कट कटाती सरदी में भी उनको ओढ़ने-बिछाने के लिये गरम कपड़े नहीं दिये गये। आग तो वे जला ही नहीं सकते थे। ईंधन वगैरः कुछ भी उनको दिया न गया था। ये सब ज्यादतियां ऐसी बातें मनवाने के लिए की गईं थी, जिनकी कि उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी। जलती हुई सिगरेट से उनको तंग करना, बूटों से ठुड्डे मारना, कुचलना और जान से मार देने की धमकी तक देना साधारण घटनायें थीं। आजाद हिन्द फौजियों ने यह सब हंसते हंसते सहन किया। वे जानते थे कि आजादी की कितनी मंहगी कीमत चुकानी पड़ती है? उनको यह भी मालूम था कि पराजित होने पर उनको किस दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा? लेकिन, अपने प्रिय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को गालियाँ का दिया जाना और उनका अपमानित किया जाना सहन करना उनके लिए अत्यन्त कठिन था। उन्होंने विष का यह घूंट भी पी लिया। जब जांच-पड़ताल करने वालों ने यह देखा कि आजाद हिन्द फौज वाले इतनी तेजी और तकलीफ देने पर भी न तो कुछ स्वीकार करते हैं और न माफी ही मांगते हैं, तब उन्होंने नए उपायों से काम लेना शुरू किया। उनकी बुरी तरह तलाशी ली गई। उनके पास नेताजी के सैकड़ों फोटो थे, आजाद

हिंद फौज के भी सैंकड़ों फोटो थे, रेडियो-कैमरा-घड़ियां-फाउण्टेन-पेन और प्रायः सभी देशों के सिक्के-टिकटें आदि भी बहुत अधिक संख्या में थीं। यह सामान उनसे जबरन छीन लिया गया। अफसोस तो यह था कि यह सब कुछ करने वाले उनके अपने ही भाई हिन्दुस्तानी थे। उनके बारे में अंग्रेज अधिकारियों से की गई शिकायतों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था।

१५ जुलाई १९४५ को फ्रांस में नजरबन्द किये गये दल को भी इंग्लैण्ड ले आया गया। यह वही दल था, जिसको नाना प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ी थीं। इंग्लैंड पहुंचने पर भी उनकी बहुत दयनीय स्थिति थी। उनको देख कर उनके साथियों की आखों में आंसू आ जाते थे। उनके हृष्ट-पुष्ट देह सूख कर कांटा हो गये थे। प्रायः उन सभी को आंव, पेचिश, दमा, क्षय, गहरे घाव और ऐसी ही दूसरी बीमारियों हो रही थीं। कुछ तो उनमें से अपंग हो गये थे। यह सब फ्रांसीसियों द्वारा उनको दी गई यातनाओं का दुष्परिणाम था। अंग्रेजों द्वारा उकसाये या भड़काये जाने पर ही फ्रांसीसियों ने उनको वे यातनायें दी थीं। उनको यह बतलाया गया था कि उनका दमन करने के लिए आजाद हिन्द फौज ने जर्मनों का साथ दिया है। इसलिए उन्होंने आजाद हिन्द फौजियों पर इतनी अधिक ज्यादतियां की थीं। उन बीमार और घायल फौजियों के साथ भी इस कैम्प में वैसा ही कठोर व्यवहार किया गया था। इनसे भी जब पूछताछ की गई, तब इनके साथ भी वैसी ही अमानुषिकता की गई। बीमार और आहत लोगों को अस्पताल भेजने के लिए आवेदन-पत्र दिये गये, किन्तु उन पर कुछ भी ध्यान दिया नहीं गया। आखिर अगस्त मास में कुछ को फौजी अस्पताल में भेजा गया।

१. नया अनुभव

कुछ समय बाद आजाद हिन्द फौज का एक और दल इंग्लैंड लाया गया। यह वह था, जिसको सोवियत रूस की सेनाओं ने गिरफ्तार करके अंग्रेजी फौजों को सौंप दिया था। पहिला दल, जिसमें केवल दस व्यक्ति थे, म्यूनिच से हवाई जहाज में लाया गया था। उसको लन्दन के पास किसी हवाई अड्डे पर उतारा गया। हवाई अड्डे पर न्यूजीलैन्डरस लारियों पर उनको सवार कर कैम्प में पहुंचाने के लिये तैनात थे। न्यूजीलैन्डरस को मालूम न था कि वे आजाद हिन्द फौज के सिपाही हैं। उन्होंने समझा कि वे जर्मनों की कैद से मुक्त किये गए हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दी हैं। उन्होंने उनसे किसी रेस्टोरेंट पर लारी रोकने के लिये कहा, जिससे कि वे कुछ खाना खा सकें। एक काफे पर लारी रोक दी गई। यहाँ वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि वहां जितने भी अंग्रेज थे, सब शराब के नशे में चूर थे। टेबल-कुर्सियां सब उलट पुलट की गई थीं और आपस में गाली-गलौज चल रहा था। उनके अन्दर घुसते ही उन स्त्री-पुरुषों ने उनको चार ओर से घेर लिया। कुछ ने 'हिन्दुस्तानी महाराज' कहकर उनका स्वागत किया और कुछ ने बखशीस तक मांगनी शुरू कर दी। एक अंग्रेज स्त्री ने एक सिख सिपाही से उसकी पगड़ी तक मांगनी शुरु कर दी। ये लोग इस दृश्य से तंग आकर बाहर निकल आये। वहां से लोरी वाला उनको एक कैंपटेन में ले आया। वहां एक बूढ़े अंग्रेज ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो?

"हम हिन्दुस्तानी हैं। इंग्लैण्ड के लिए हम लड़ रहे थे। हमें जर्मनों के हाथों से रिहा करके यहां लाया गया है।"

"खूब! क्या तुमको कुछ चाहिए?"—उस बूढ़े आदमी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए पूछा।

आजाद हिन्द फौजी ने जवाब में कहा कि "हां हमें सभी कुछ चाहिये। हमारी जेबें खाली हो चुकी हैं।"

यह सुनकर वह हक्का-बक्का सा रह गया। उसके पास देने को कुछ था नहीं। जेब में उसने हाथ डाला और दो शिलिंग देकर उसने अपना पीछा छुड़ाया।

एक आजाद हिन्द फौजी ने ताना कसते हुए कहा कि "वाह! केवल दो शिलिंग। हमने तो तुम्हारे लिए अपनी जान लड़ा दी और तुम्हें कुछ पैसे भी इतने भारी पड़ रहे हैं।"

वह बूढ़ा अंग्रेज कुछ कहे-सुने बिना चुपके से बाहर चल दिया।

आजाद हिन्द फौजियों ने भीतर जाकर देखा कि एक अमेरिकन एक टामी को पीट रहा था और सब अंग्रेज तमाशा देख रहे थे। किसी को उस यांकी (अमेरिकन) को रोकने का साहस नहीं हो रहा था। यह झगड़ा एक लड़की के पीछे हो रहा था, जो पास में खड़ी थी।

यहां से भी ऊब कर आजाद हिन्द फौजी बाहर निकल आए। इंग्लैण्ड के सम्बन्ध में उनका यह पहिला प्रत्यक्ष अनुभव था। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि अंग्रेज हिंदुस्तानियों से कुछ अधिक सभ्य नहीं हैं और उन पर उनकी हकूमत का कारण उनका अधिक सभ्य होना नहीं है। अपने घर में वे हिंदुस्तानियों से भी अधिक असभ्य है। केवल कूटनीति के ही कारण वे हिंदुस्तान पर हकूमत कर रहे हैं। अंग्रेजों के बारे में उनकी सम्मति एक दम ही बदल गई। उनके उच्च होने का विचार उनके दिमाग में से निकल गया। अपने देश की आजादी में उनका विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया

और नेताजी द्वारा उनमें पैदा की गई यह धारणा और भी मजबूत हो गई कि अंग्रेजी राज का अपशकुन दूर होने पर हिन्दुस्तान के महान होने में अधिक समय न लगेगा।

केण्टीन से आजाद हिन्द फौजी युद्ध-बंदी-कैम्प में आ गये। लेकिन, अगले ही दिन उनको भी विद्रोहियों में शामिल कर के उस कैम्प में भेज दिया गया, जो आजाद हिन्द फौजियों अथवा विद्रोही हिन्दुस्तानियों के लिए कायम किया गया था। एक दिन दो आजाद हिन्द फौजी कैम्प में से खिसक गये। पास की एक आबादी में एक अंग्रेज घर में जाकर उन्होंने कुछ खाने को मांगा। घर की मालकिन महिला ने बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत किया और उनको भोजन खिलाया। भोजन के बाद चाय का प्याला हाथ में लेते हुए एक आजाद हिन्द फौजी ने कहा कि "तुम अंग्रेज लोग तो यहां खूब मौज उड़ाते हो। चाय, काफी, दूध, रोटी, मक्खन आदि सभी कुछ खाने के लिए तुम्हारे पास है। हमारे देश में तुमने हमारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। लोग वहां भूखे मरते हैं।"

"क्या तुम हिन्दुस्तान में चाय भी नहीं पीते?" उस महिला ने उत्सुकता से पूछा।

आजाद हिन्द फौजी ने कहा कि "जब कि अंग्रेज लोग सारी चाय लूट कर अपने यहाँ ले आते हैं, तब हिन्दुस्तानी कहां से पियें? उनके लिए वहां रह ही क्या जाता है?"

महिला बड़े चाव से यह सारी बातचीत सुन रही थी। अंग्रेजों की निर्भीक आलोचना सुन कर उसको कुछ अचरज हुआ। उसने विस्मय के साथ उनके बारे में कुछ जानना चाहा और पूछा कि "तुम कौन हो?

मामूली हिन्दुस्तानियों से तुम कुछ अलग ही जान पड़ते हो।"

उन्होंने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया कि "हम सुभाष बोस की फौज के सिपाही हैं। यह तो आपको मालूम ही होगा कि हम कहां से आ रहे हैं?"

सुभाष बाबू का नाम सुन कर वह महिला और भी अधिक अचम्भे में पड़ गई। उसके हाथों से चाय का प्याला छूट गया। कांपती हुई आवाज में उसने पूछा कि "आप यहां कैसे आ गये?"

"क्या आपको यह मालूम नहीं कि कुछ ही दिन हुए हैं कि सुभाष बोस की फौज इंग्लैण्ड में आ पहुंची है।"—उनमें से एक ने कुछ विनोद के साथ कहा।

वह और भी अधिक चकित होकर बोली कि "क्या यह सच है? हम तो समझे थे कि लड़ाई समाप्त हो गई है।"

'नहीं, अभी लड़ाई समाप्त नहीं हुई। तुम्हारे रेडियो और समाचार-पत्र तुमको सही समाचार नहीं देते।"

वह महिला दौड़ी हुई पास के घर में यह सब चर्चा करने गई और उसके मेहमान भी नौ दो ग्यारह हो गये। आजाद हिन्द फौजियों के लिए यह नया अनुभव बहुत ही विनोदपूर्ण रहा। कैम्प में लौट कर उन्होंने अपने साथियों से इसकी चर्चा की। इंग्लैण्ड के जीवन का एक वास्तविक चित्र उनको देखने को मिल गया और पता चल गया कि अंग्रेज उनके महान नेता का नाम सुनते ही कितने भयभीत हो जाते हैं?

२—युद्धबन्दियों का कैम्प

आजाद हिन्द फौज में भरती न होने वाले हिन्दुस्तानी युद्धबन्दियों







"फ्राइज इण्डीन लिजों" के तीन वीर सिपाही—पदमसिंह, अल्तावर खाँ और इशाक। तीनों को 'वीर ए हिन्द' पदक से सम्मानित किया गया था (देखिए अध्याय १५)।

को भी इस बीच में इंग्लैण्ड ले आया गया था। उनका यह ख्याल था कि इंग्लैण्ड में लाये जाने के बाद अंग्रेज उनके साथ अच्छा व्यवहार करेंगे। लेकिन, इंग्लैण्ड पहुंचने पर उनकी सब आशाओं पर सहसा तुषारपात हो गया। उनको तुरन्त जापानी युद्धमोर्चे पर जाने का आदेश दिया गया। जांच-पड़ताल करने वाले भेदिया पुलिस के लोगों ने उनको भी तंग करना शुरू कर दिया। उन पर यह सन्देह किया गया कि कहीं उन्होंने जानबूझ कर ही तो जर्मनों के सामने आत्म-समर्पण नहीं किया था और वैसे वे कहीं जापानियों के सामने तो आत्मसमर्पण न कर देंगे। फिर, इस बात का निर्णय करना भी जरूरी समझा गया कि उन पर सुभाष बाबू का रंग तो नहीं चढ़ा है। इसलिए उनसे पूछा गया कि उन्होंने नेताजी सुभाष बाबू को कब और कहां देखा था, वे उनसे कब और कहां मिले थे, उन्होंने उनके भाषण कब और कहां सुने थे और वे उनके किसी प्रदर्शन में तो शामिल नहीं हुए? उनसे ऐसे अनेक प्रश्न पूछे जाते और जब किसी प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में सन्देह होता, तब उनको बुरी तरह तंग किया जाता। उनको रहन-सहन और भोजन आदि की वैसी सुविधायें भी नहीं दी गईं, जैसी कि जर्मनी में दी गई थीं। भोजन बहुत ही खराब दिया जाता था। रहने की बैरकें भी खराब थीं। तब उन्होंने यह अनुभव किया, अपने देशभाइयों में अपनी प्रतिष्ठा खोने के साथ-साथ अंग्रेजों की नजरों में भी उनकी कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है। अंग्रेजों पर भरोसा करने की भूल पर उनको पश्चात्ताप-सा हुआ। जर्मनों के हाथों कैद रहने वाले अंग्रेज युद्धबन्दियों को तो तीन-तीन मास की छुट्टी पूरे वेतन और भत्तों के साथ दी गई थी। उनको छुट्टी तो क्या ही मिलनी थी, उलटी मुसीबतें झेलनी पड़ गईं और सीधा जापान

के मोर्चे पर जाने का हुक्म मिला। अंग्रेजों के प्रति वफादार रहने का यह इनाम उनको मिला।

३—बादशाह कैम्प

एक दिन समाचार मिला कि युद्धबंदियों के कैम्प का इंग्लैंड के राजा और रानी दोनों निरीक्षण करने आने वाले हैं। नियत दिन पर वे आये और राजा का एक छोटा सा भाषण भी हुआ। भाषण का सार निम्न प्रकार था—"मैं आप सब को जर्मनों के हाथों में पांच वर्षों तक गिरफ्तार रहने के बाद स्वतन्त्र हुआ देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। तुम्हारी वफादारी पर मुझे बड़ा गर्व है। अपने कर्तव्य का आप लोगों ने जिस ढंग से पालन किया है, उसके लिए मैं बहुत खुश हूं। लेकिन युद्ध तो अभी समाप्त नहीं हुआ है। अभी हमें एक और दुश्मन जापान का सामना करना है। इसके साथ भी बहादुरी से लड़ना आपका कर्तव्य है। जापान हिन्दुस्तान का भी दुश्मन है। इसलिए उसको हराये बिना संसार में, विशेषतः हिन्दुस्तान में, शांति कायम नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है कि आप अपने इस कर्तव्य का पालन भी सचाई और ईमानदारी के साथ करोगे।"

इस भाषण ने असन्तोष की आग में घी डालने का काम किया। वर्षों बाद स्वदेश जाने और घर वालों से मिलने की उनकी इच्छा अन्धकार में मिल गई। उन्होंने भाषण के बाद प्रश्नों की झड़ी लगा दी। एक ने तो हिन्दुस्तानी में ही सवाल करने शुरू कर दिये। बादशाह ने उससे पूछा कि क्या तुम अंग्रेजी में बात नहीं कर सकते।

उस सिपाही ने कहा कि "मेरे इलाके में कोई भी अंग्रेजी नहीं जानता।"

"यह कैसी बात है ?"—बादशाह ने आश्चर्य के साथ पूछा।

सिपाही ने कहा कि "इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अंग्रेजी पढ़ाने के लिए हिन्दुस्तान में कितने स्कूल खोले गये हैं ? आपको क्या पता कि हिन्दुस्तानियों को भरपेट खाने को भोजन और तन ढकने को पूरा कपड़ा भी तो नहीं मिलता। इनको नंगे-भूखे रहना पड़ता है। अपनी प्रजा का इस हालत में पड़ा रहना किसी भी राजा को शोभा नहीं देता।"

बादशाह को कल्पना भी न थी कि युद्धबन्दियों में इतना असन्तोष और अशान्ति छाई हुई है। बहुत निराश होकर वे कैम्प से वापिस लौटे।

१८

बहादुरगढ़ में नारकीय यातनायें

इंग्लैण्ड की आम जनता पर यह प्रकट ही नहीं होने दिया गया कि सुभाष बोस की आजाद हिन्द फौज के फौजियों को बंदी बनाकर इंग्लैण्ड लाया गया है। उनको इंग्लैंड की जनता के सम्पर्क में आने ही नहीं दिया गया। उनको भय था कि इनको लेकर कोई चर्चा शुरू न हो जाय। जापान के युद्ध के रहते ऐसी किसी चर्चा का शुरू होना अभीष्ट न था। इसीलिये अगस्त १९४५ में जब उनको हिन्दुस्तान लाया गया, तब यह हुक्म जारी किया गया कि जहाज पर जाने के रास्ते में उनको किसी भी प्रकार के नारे न लगाने होंगे और न किसी प्रकार का हंगामा ही मचाना होगा। उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह न की। १२ अगस्त को जब उनको लारियों से बन्दरगाह पर लाया गया, तब उन्होंने नारों की तुमुल ध्वनि से आकाश गुंजा दिया। 'नेताजी जिन्दाबाद, 'आजाद हिन्द जिन्दाबाद' और 'इनकलाब जिन्दाबाद' के नारों से सारा रास्ता गूंज गया। उन्होंने हाथ से लिखकर कुछ पोस्टर और पेम्फलेट भी तय्यार कर लिये थे, जिनमें युरोप में आजाद

हिन्द का इतिहास देने के साथ साथ कैम्प में अपने साथ किये गए दुर्व्यवहार का भी हाल दिया गया था। ये पर्चे और पैम्फलैट रास्ते में बांटे गये भी जहां भी कहीं उनकी गाड़ियां खड़ी होतीं, लोग उनको चारों ओर से घेर लेते।

१. स्वदेश में

इटली होकर उनको भूमध्य सागर से हिन्दुस्तान लाया गया। २८ अगस्त को उनका जहाज बम्बई पहुंचा। इसमें २५० आजाद हिन्द फौजी थे। छः वर्षों के लम्बे समय के बाद वे स्वदेश लौटे थे। उनको आशा तो यह थी कि वे विजयी होकर स्वतंत्र देश में वापिस लौटेंगे। लेकिन, भाग्य पलटा खा चुका था। उनको पराधीन देश में बंदी ही हालत में लाया गया। उनका सुख-स्वप्न अधूरा ही रह गया। छः वर्षों में देश की साधारण अवस्था और भी खराब हो चुकी थी। वास्तविक युद्ध की घटाओं के देश में न बरसके पर भी उनकी काली छाया देश पर अपना कुप्रभाव छोड़ गई थी। बंगाल के दुर्भिक्ष की पीड़ा से देश कराह रहा था और युद्ध से पैदा हुई तंगी तथा तकलीफ भी सब ओर अनुभव की जा रही थी। युरोप में उन्होंने आजादी की सांस ली थी। यहां दम घोटने वाली गुलामी की हवा में सांस लेना भी मुश्किल हो रहा था। जगह जगह पर नंगे-भूखे देशवासियों को देखकर उनके हृदयों में दया का समुद्र उमड़ पड़ता था। उन्होंने अपने कपड़े, सामान और रुपया-पैसा उनमें बांटना शुरु कर दिया। उन पर तैनात अंग्रेज सिपाही यह सब आश्चर्य के साथ देख कर रह जाते। वे उनको वैसा करने से रोकते। पर, उनकी सुनता कौन था?

२—दिल्ली स्टेशन पर

बम्बई से उनको सीधा दिल्ली लाया गया और उन पर हिन्दुस्तानी पहरा लगा दिया गया। जितनी उनकी संख्या थी, उतने ही उन पर पहरा देने वाले तैनात किये गये थे। दिल्ली स्टेशन पर पहुंचते ही बन्दियों ने अपने डिब्बों पर तिरंगे झण्डे फहरा दिये और क्रान्तिकारी नारे लगाने शुरू कर दिये। कई राष्ट्रीय गाने भी उन्होंने गाये।

अकस्मात् उसी समय पंडित जवाहरलाल नेहरू वायसराय लार्ड वावेल द्वारा बुलाई गई गोलमेज कान्फ्रेंस में शामिल होने के लिए दिल्ली होते हुए शिमला जा रहे थे। लम्बी नजरबन्दी के बाद रिहा होकर पण्डितजी पहिली ही बार दिल्ली आ रहे थे। इसलिए लोग फूलमालायें लेकर उनका स्वागत एवं अभिनन्दन करने के लिए स्टेशन पहुंचे हुए थे। फौजियों के नारों और राष्ट्रीय गीतों की आवाज ने उनको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि फौजी वेश में वे लोग राष्ट्रीयता का प्रदर्शन कर रहे थे और उनके चारों ओर फौजी पुलिस का कड़ा पहरा था। वे एकाएक समझ न सके कि मामला क्या है?

"ये फौजी राष्ट्रीय झण्डों के साथ! सचमुच अचरज ही है!" उनमें आपस में कानाफूसी शुरू हुई।

"ये कौन हैं? कहां से आये हैं?"—एक ने पूछा।

कुछ उत्साही लोग आगे बढ़ कर उनके पास तक गये। पहरेदारों के रोकनेपर भी उन्होंने उनसे बातचीत शुरू कर दी। उन्होंने बताया कि वे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की युरोप में खड़ी की गई आजाद हिन्द सेना के सिपाही हैं और बन्दी बना कर हिन्दुस्तान लाये गये हैं। सहसा

लोगों को विश्वास न हुआ। फौजी अचम्भे में थे कि उनके देशवासियों को युरोप में हुए इतने बड़े आजाद हिन्द आन्दोलन की कुछ भी जानकारी नहीं है। उन फौजियों ने लोगों को नेताजी सुभाष बोस के फोटो वगैरः भी दिखाये। सहसा सारे वातावरण में बिजली-सी दौड़ गई। पहरेदार ताकते रह गये। लोग उनको खूब हिल-मिल कर मिले। नेहरूजी के लिए लाई गई फूल-मालाओं से नेताजी के वीर सैनिकों का स्वागत और सम्मान किया गया।

पहरेदारों पर भी इस सबका जादू का सा असर पड़ा। वे यह भूल ही गये कि वे कैदियों पर पहरेदार बनाये गए हैं। वे उन्हीं में घुल-मिल गये और लगे राष्ट्रीय नारे लगाने। उस प्रदर्शन को देख कर उनका अंग्रेज कमान अफसर हक्का-बक्का-सा रह गया। उसे कुछ भी सूझा नहीं कि क्या करे? उसने उस प्रदर्शन को रोकना चाहा। लेकिन, उन्मत्त जनता और उन्मत्त फौजियों के राष्ट्रीय जोश के सामने उसकी एक न चली।

इतने ही में वह गाड़ी आ पहुंची, जिससे पंडित नेहरू आ रहे थे। आजाद हिन्द फौजियों ने 'जयहिन्द' के नारों और फौजी जयहिन्द सलामी से उनका स्वागत एवं अभिनन्दन किया। उनकी नेहरूजी से थोड़ी सी बातचीत भी हुई। उन्होंने जर्मनी में दिये गये वे बिल्ले भी नेहरूजी को दिखाए, जिन पर तिरंगे झण्डे पर छलांग मारता हुआ शेर बनाया गया था। पंडित जी को वह सब देख कर और जान कर बहुत खुशी हुई।

वह एक ऐतिहासिक घटना थी। आजाद हिन्द फौजियों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। नेताजी के समान ही अपने देश के एक

और तेजस्वी नेता के दर्शन पाकर वे कृतार्थ हो गये। दिल्ली से उनको अलग-अलग स्थानों पर भेजा जाना था। वे उस भावी संकट को भूल से गये और पंडित जवाहरलाल नेहरू.... ! उस समय की उनकी मनोदशा के चित्र का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। आप जिस मिशन पर शिमला जा रहे थे, वह देश की किस्मत को एक नए ढांचे में ढालने वाला था। उसकी गम्भीरता की छाया उनके चेहरे पर साफ झलक रही थी। वर्षों अहमदनगर के किले में बंद रहने के बाद खुली हवा में आने और उन वर्षों में देश में पैदा हुई समस्याओं को जानने व समझने का अवसर मिले कुछ अधिक समय न हुआ था। 'जयहिन्द' के रूप में एक नयी समस्या आपके सामने खड़ी हो गई। लेकिन, उस समय तो आप 'जयहिन्द' के रंग में ऐसे रंग गये, मानो 'जयहिन्द' का जादू ही आप पर चढ़ गया हो। आपके हृदय में समाने के बाद 'जयहिन्द' सहसा सारे देश में फैल गया और अब तो वह आपके साथ उन सरकारी क्षेत्रों में भी जा पहुंचा है, जो कभी उसके अस्तित्व का अन्त करने में लगे हुए थे।

५—मुलतान जेल में

दिल्ली से उनको मुलतान ले जाया गया। रास्ते में उनको पता चल गया कि पूर्वीय एशिया से लाये गये उनके बहुत से साथी वहां पहिले ही पहुंचा दिये गये हैं। वे बड़ी उत्सुकता से मुलतान जेल पहुंचे, किन्तु वहां पहुंचने पर उनकी सब उत्सुकता और उत्साह ठण्डा पड़ गया, क्योंकि उनको अलग बैरकों में सख्त पहरे में रखा गया और अपने साथियों से मिलने का अवसर भी नहीं दिया गया।

६. बहादुरगढ़ का नारकीय जेल.

सितम्बर १९४५ के लगभग तक आजाद हिन्द फौज के सभी बंदी युरोप से हिन्दुस्तान लाये जा चुके थे। आजाद हिन्द सरकार के अनेक मंत्री और अधिकारी तो अब तक भी हिन्दुस्तान नहीं आने पाये हैं। दिल्ली के पास बहादुरगढ़ के समीप आसोदा गांव में एक विशेष नजरबन्द कैम्प आजाद हिन्द बन्दियों के लिये तय्यार किया गया था। इसको सात घेरों में बांटा गया था और हर घेरे में तीन सौ बन्दी रखे गये थे। हर घेरे को चारों ओर से कटीली तारों से घेरा गया था और उन पर कड़ा पहरा लगाया गया था। पहरेदारों के चारों ओर भी कांटेदार तार लगाई गई था। अंग्रेज अफसरों के सिवाय किसी और को भीतर आने-जाने की सुविधा नहीं थी। बन्दियों के साथ अत्यन्त निर्दय व्यवहार होता था। फ्रांस और इंग्लैण्ड में भी उनके साथ ऐसा कठोर और निर्दय दुर्व्यवहार न हुआ था। सभी तरह की तंगी, तकलीफ और मुसीबत उनको झेलनी पड़ी थी। उनका अपराध इतना ही था कि वे नेताजी का साथ देने के लिये माफी मांगने को तय्यार न थे। ऐसी अपमानास्पद मांग के सामने सिर झुकाना उन्होंने सीखा ही न था। उनको अपने राष्ट्रीय गीत गाने और राष्ट्रीय नारे लगाने से भी रोका गया। इनका असर उन हिन्दुस्तानी फौजियों पर बहुत बुरा पड़ता था, जिनको उन पर पहरा देने के लिये तैनात किया गया था। इस प्रकार इन बन्दियों की भावना, जोश और उत्साह को कुचलने की भरसक कोशिश की गई। लेकिन, वे सारी कोशिशें बिलकुल बेकार गईं।

अक्तूबर १९४५ में अपने गुरगों को आगे करके अंग्रेज अफसरों ने उनकी एकता को छिन्न-भिन्न करने का मायाजाल रचा। उनके रसोई घर भी इसी मतलब से अलग अलग बनाने चाहे। लेकिन, उन्होंने ऐसा न होने दिया। जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय के नाम पर भी उन्होंने अलग अलग रसोईघर न बनने दिए। अंग्रेजों की भेद-नीति यहां सफल न हो सकी। भेदनीति के भी विफल हो जाने पर उन्होंने दण्ड नीति से काम लेने का फैसला किया और उसके लिये नये नये बहाने ढूंढने शुरू किये।

एक रात को एक जमादार कोई मामला तय्यार करने के लिये "बी" घेरे में घुस गया। उसने एक बीमार बन्दी को कुछ मेहनत-मजूरी करने का हुक्म दिया। बन्दी ने बीमार होने से अपनी असमर्थता प्रकट की और वह काम अपने किसी साथी से करा देने की बात कही। लेकिन, जमादार उसी से काम लेने की जिद पर अड़ गया। मामला बहुत बढ़ गया। दूसरे बन्दियों ने भी जमादार को समझाया और काम कर देने की इच्छा प्रगट की। जमादार काम करा लेने की बजाय शिकायत लेकर कर्नल के पास दौड़ा गया। कर्नल ने कहा—ठीक है। तुम्हारा अपमान करने वाले के होश ठीक कर दिये जायेंगे।" वह स्वयं 'बी' घेरे में आया और सबको उसने पंक्ति में खड़े होने का हुक्म दिया। उसने कहना शुरू किया कि "तुमने एक अफसर का अपमान किया है। इसलिये तुम सबको तीन दिन की सख्त कैद की सजा दी जाती है। तुमको सवेरे से शाम तक धूप में परेड करनी होगी, तम्बू उखाड़ने और खड़े करने होंगे और मेहनत-मजूरी का दूसरा काम भी करना होगा।"

बंदियों को गुस्सा आ गया। उन्होंने कर्नल से पूछा कि "इस सजा के देने का कारण क्या है? हम ऐसी सजा भुगतने को तैयार नहीं हैं।"

उसने कुछ भी कारण न बताकर उन पांच-छः बंदियों को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया, जिन्होंने जमादार से उस बीमार से काम न लेकर स्वयं काम कर देने की इच्छा प्रकट की थी।

इस पर सब बंदी चिल्ला उठे कि हमें भी गिरफ्तार करो। हम सब अपने साथियों के साथ हैं।

परिस्थिति बिगड़ती हुई देखकर कर्नल उस समय तो बाहर चला गया और उसने अपने सब आधीन अफसरों को इकट्ठा किया। ७६ वीं कम्पनी के अफसरों और फौजियों से पूछा कि क्यों न 'बी' घेरे के गुस्ताख बन्दियों को गोलियों से भून दिया जाय? ये उस घेरे के पहरे पर तैनात थे और उनके हृदय में बन्दियों के लिए कुछ सहानुभूति पैदा हो चुकी थी। उन्होंने कर्नल का साथ देने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कह दिया कि हमारा काम पहरा देना है, जोर-जुल्म या ज्यादती करना नहीं है। कर्नल उनके इस जवाब पर स्तम्भित रह गया और दूसरे ही दिन इस भय से कि कहीं वे विद्रोह न कर बैठें उसने सारी कम्पनी को हथियार रख देने का हुक्म दे दिया और उनको दूसरे स्थान पर भेज दिया। उनके स्थान पर गुरखा फौजी लाये गये। वे सब सिपाही ही थे। उनके साथ अफसर एक भी न था। वहां लाने से पहिले उन गुरखा सिपाहियों को आजाद हिंद फौज के बारे में बेसिरपैर की बातें बता कर खूब बहका दिया गया था। उनको बताया गया था कि उन्होंने बहुत-से गुरखों को मौत के घाट उतार दिया है। अंग्रेज अफसरों ने उनको चाय पार्टी भी दी।

एक दिन शाम को 'बी' घेरे की सारी चारपाइयां उठा ली गईं और बंदी-फौजियों को खुले में जमीन पर सोने को कहा गया। सवेरे उन सब को 'ड' घेरे में जाने का हुक्म दिया गया। वह घेरा खाली पड़ा था। उसमें तम्बू वगैर: कुछ भी न था। हर एक के साथ खुली किरचें लिए हुए दो-दो गुरखा थे। वहां उनको हाथ ऊंचा करके दौड़ने को कहा गया। जो दौड़ न सका या दौड़ता हुआ रुक जाता अथवा गिर जाता, उसको बन्दूकों के कुंदों से पीटा जाता। उनमें बूढ़े, जवान, कमजोर और रोगी सभी तरह के लोग थे। फिर भी सब ने दौड़ना शुरु कर दिया। रुकने या गिरने वालों को बुरी तरह निर्दयता के साथ पीटा जाता और वे बेहोश तक हो जाते। एक अंग्रेज अफसर यह मार-पीट करवा रहा था। गुरखे पीटते हुए यह भी कहते थे कि गुरखों को सताने की यह सजा है। एक दिक्कत और थी। न तो कोई आजाद हिन्द फौजी नेपाली भाषा बोल सकता था और न कोई गुरखा हिन्दुस्तानी समझता था। दोनों आपस में एक दूसरे को अपनी बात कह नहीं सकते थे।

चार घण्टों तक इसी प्रकार मार-पीट होती रही। उस सवेरे कुहरा इतना छा रहा था कि अन्य घेरों में रखे गयों को कुछ भी पता न चला कि 'ड' घेरे में क्या हो रहा है ? कोहरा हटने पर उनको पता चला कि वहां क्या हो रहा था ? लेकिन, वे क्या करते ? पिंजरे में बद शेर की तरह वे घुर्रा कर रह गये।

सवेरे १० बजे एम्बुलैंस गाड़ियां आईं और अधिक घायल हुए फौजियों को अस्पताल पहुंचाया गया। हर एक के बदन पर किरचों के चार-चार पांच-पांच घाव थे। कुछ का देहान्त भी हो गया। पर उनका

पता किसी को न दिया गया। उनकी मरहमपट्टी करने वाले हिन्दुस्तानी डाक्टर की आंखों में आंसू आ गये। उसने अपने ऊपर के अधिकारियों को रिपोर्ट दी कि उनके साथ अमानुष, निर्दय और अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया था ? फल यह हुआ कि उस डाक्टर को नौकरी से हाथ धोना पड़ गया। घायलों की सेवा-सुश्रुषा भी ठीक तौर पर न हुई। जो जिन्दा बच आये, उनके साथ कैम्प में आने पर फिर वैसा ही अमानुष दुर्व्यवहार किया गया। दिनभर धूप में खड़ा करके उनसे परेड कराई जाती। उनका राशन कम कर दिया गया। उनसे कड़ी मेहनत की जाती। उनसे तम्बू खोलने और खड़ा करने का काम लिया जाता। ये ज्यादतियां और अत्याचार जर्मनी के बेलसन कैम्प को भी मात कर गये। शारीरिक यातनाओं के साथ-साथ उनको मानसिक यातनायें भी कुछ कम न दी जाती थीं। मानसिक खुराक का तो कैम्प में नितान्त अभाव था। अपने सम्बन्धियों और दोस्तों को वे पत्र तक नहीं लिख सकते थे, उन पर कड़ा सैंसर रखा जाता था। किसी को उनसे मिलने भी नहीं दिया जाता था। उनको मिलने जाने वाले उनके सम्बन्धी निराश होकर लौटते थे। पहरे पर नियुक्त फौज वाले उनको गालियां देते, दुतकारते और उनके साथ अशिष्ट व्यवहार करते थे। कभी-कभी उनको गिरफ्तार करके पुलिस के सिपुर्द कर देते थे। इस दुर्व्यवहार से तंग आकर नजरबन्द कभी-कभी बिगड़ जाते थे। इस पर उनके साथ और भी अधिक सख्तियां होती थीं। पुस्तकों और समाचारपत्रों का मिलना तो सम्भव ही न था। इस प्रकार उनको सारे संसार से अलग रखा गया था। कभी-कभी 'फौजी' अखबार जरूर दे दिया जाता था। उसमें केवल सरकारी दृष्टिकोण की चीजें दी जाती थीं। उनको कागज-

पैंसिल भी नहीं दिया जाता था। सेफ्टी रेजर और ब्लेड भी उनसे ले लिये गये थे।

इंग्लैण्ड के नजरबंद कैम्प में ही उनका सारा सामान छीन लिया गया था। यदि कुछ बचा था, तो वह यहां बहादुरगढ़ आने पर छीन लिया गया था। कैमरे, घड़ियां, अंगूठियां, तिरंगे बैज आदि सब सामान उनसे ले लिया गया था। रिहा होने पर भी यह सामान उनको दिया नहीं जाता था।

भोजन बहुत ही खराब दिया जाता था। अपने पास से उनको कुछ भी खरीदने न दिया जाता। खरीदने को कुछ था भी नहीं और पैसा भी उनके पास कुछ न था। अपने मित्रों या सम्बन्धियों का भेजा हुआ पैसा भी उनको लेने न दिया जाता था।

उन पर पहिरे के लिए तैनात गुरखा सिपाही सब अशिक्षित थे। साधारण पढ़े-लिखों को भी इस लिए न रखा जाता था कि कहीं वे नजरबंदों के साथ सहानुभूति प्रकट न करने लग जांय। फिर उनमें उनके प्रति प्रचार भी इतना गंदा और विषैला किया गया था कि उनकी सारी सहानुभूति नष्ट कर दी गयी थी। नजरबंदों को राष्ट्रीय गीत गाने तथा नारे लगाने आदि से भी रोक दिया गया था। एक दूसरे को 'जयहिन्द' कहने से भी उनको रोका जाता था। सिपाही बात बात में उन पर ताने कसा करते थे।

इन सब ज्यादतियों को सहन करते हुए भी उनके हौसले कभी पस्त न होते थे। वे छाती तानकर सिर ऊंचा किये अभिमान के साथ उस सारे दुर्व्यवहार को सहन करते थे। माफी मांगने के लिये उन पर जोर-जबरदस्ती और जुल्म-ज्यादती की जाती थी। सजा देने,

के लिये बहाने ढूंढ़े जाते थे और सजा भी अत्यन्त कठोर और अमानुष दी जाती थी। एक भयानक सजा यह थी कि खुले मैदान में दो बल्लियां गाड़ी गई थी। उनके दोनों हाथ-पैर उनके साथ बांध दिये जाते थे और सिर भी बांध दिया जाता था। दोनों कंधों पर रेत से भरी हुई बोरियाँ रख दी जाती थीं। मजबूत से मजबूत आदमी भी इस कठोर सजा को सहन नहीं कर सकता था। खोलने पर ऐसा मालूम होता था, जैसे कि वह महीनों का बीमार हो। कुछ को फेफड़ों की बीमारी की शिकायत हो जाती थी और सारी आयु के लिये उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता था। इस सजा का नाम 'हवाई जहाज" था। इस सजा से गोली खाकर मर जाना उनको कहीं अधिक पसंद था। कभी कभी रेत का भरा बोरा उठा कर एक घण्टा दौड़ने को लाचार किया जाता था। लेकिन, वे कुछ ही मिनटों में बेहोश होकर गिर पड़ते थे। कुछ तो इन अत्याचारों से तंग आकर जीवन से भी हाथ धो बैठे थे। जियाउद्दीन और प्रीतम की मृत्यु इन्हीं जुल्म-ज्यादतियों से हुई थी।

आजाद हिन्द फौजियों का उत्साह धीमा नहीं पड़ा। वे अपने निश्चित कार्यक्रम में उसी प्रकार लगे रहे। सवेरे-शाम वे राष्ट्रीय गाने गाते और आकाश उनके मधुर गीत से गूंज उठता। १४ नवम्बर १९४५ को कैम्प में पं० जवाहरलाल नेहरू के जन्म दिन के मनाने का निश्चय किया गया। राष्ट्रीय गान हुआ और 'च' घेरे पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। इस घेरे में अधिकतर फौज के अफसर रखे गये थे। कमान-अफसर ने २०० फौजियों को उस झण्डे को उतारने के लिए भेजा। राइफलें, मशीन गनें, टामी गनें और किरचें तान कर ख, ब और द घेरों पर उन्होंने हमला बोल दिया। जमादारों और

सूबेदारों को लेकर अंग्रेज अफसर 'च' घेरे में गया और सबको पंक्ति में खड़ा होने का उसने हुक्म दिया। उसने कहा कि यदि वे अनुशासन और नियन्त्रण में न रहेंगे, तो उनको भी 'बी' घेरे वालों की-सी सजा दी जायगी।

दिसम्बर १९४५ में कुछ को छोड़ा गया। ६ जनवरी १९४६ को लाल किले के मुकद्दमें में तीनों अफसरों के रिहा किये जाने पर कैम्प में आनन्दोत्सव मनाया गया। रोशनी की गई। तुरन्त उसको अंग्रेज अफसरों ने बुझवा दिया। कुछ जोर-जबरदस्ती से भी काम लिया गया। यह खबर दिल्ली में फैलने पर दूसरे दिन कुछ पत्रों के सम्वाददाता कैम्प में जांच-पड़ताल करने गये।

२३ जनवरी को कैम्प में नेताजी का जन्म-दिवस मनाने के लिये कैम्प के कर्नल की अनुमति मांगी गई। अनुमति देनी तो दूर रही, उनको इकट्ठे बैठकर भोजन भी नहीं करने दिया गया और पांच का एक जगह इकट्ठा होना भी रोक दिया गया। निस्संदेह, बहादुरगढ़ कैम्प में की गई ज्यादतियां जर्मनों के वैलसन कैम्प की तथाकथित ज्यादतियों को भी मात कर गईं। १९४६ में देश की साधारण परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ, उसका असर बहादुरगढ़ कैम्प पर भी पड़ा। नजरबन्दों को धीरे धीरे छोड़ा जाने लगा। अप्रैल १९४६ तक सबको छोड़ दिया गया।



फ्राइ ज इण्डीन लिजों--ऊपर उसका झंडा है। नीचे नेताजी फौजी परेड का मुआयना कर रहे हैं।

१६

उपसंहार

दीन, हीन और पराधीन देश की आजादी का आन्दोलन उसकी अपनी ही सीमा में सीमित न रह कर विदेशों में भी जा फैलता है। उसके संचालकों के लिये जब स्वदेश में रह कर आन्दोलन का संचालन करना सम्भव नहीं रहता, तब वे विदेशों की शरण लेते हैं और वहां रहकर उसका संचालन करते हैं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से पहिले भी हिन्दुस्तान के कुछ सुपूतों को विदेशों की शरण लेना पड़ी थी और उन्होंने स्वदेश की आजादी के आन्दोलन का संचालन एशिया, युरोप और अमेरिका के भिन्न भिन्न देशों में रह कर किया था। लेकिन, नेताजी के नेतृत्व में युरोप में उसका संगठन बहुत बड़े पैमाने पर किया गया था। उसका इतिहास इस पुस्तक में देने का यत्न किया गया है। इस पुस्तक की सारी सामग्री उन भुक्तभोगी वीर योद्धाओं से प्राप्त की गई है, जिन्होंने अपने को नेताजी के हाथों में सौंप कर अपना सर्वस्व भारतमाता के चरणों में अर्पित कर दिया था। जिन सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने अपने को इस महान् मिशन में लगाया था और

उसके लिए जो भीषण यातनायें उन्होंने झेली थीं, उसकी यथार्थ जानकारी सिवाय भुक्तभोगियों के और किसको हो सकती है ?

नेताजी सुभाष बोस ने कलकत्ता से जर्मनी तक की, खास तौर पर पेशावर से काबुल तक की यात्रा, में काबुल की सराय में किये गये जीवन-यापन में और जर्मनी से १५ हजार मील समुद्र के गर्भ में पार कर पूर्वीय एशिया पहुंचने में जिस साहस से काम लिया, उसकी जरा कल्पना तो कीजिये। सहसा हृदय कांप उठता है। जर्मनी पहुंचने के बाद अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए आपको एक सैनिटोरियम में कई मास रहना पड़ा। लोगों ने तो यह समझ लिया था कि नेताजी संन्यासी बनकर हिमालय में तपस्या करने चले गये हैं। यह भी कहा गया था कि जापान जाने की कोशिश में आप हवाई दुर्घटना के शिकार हो गये हैं। लेकिन, आपका सुरक्षित जर्मनी पहुंच जाना इस दुनिया का आठवां आश्चर्य था। युरोप के भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को एक सूत्र में पिरोना और स्वदेश की आजादी के आन्दोलन के लिए युरोप के भिन्न भिन्न देशों के लोगों की सहानुभूति प्राप्त करना कुछ आसान काम न था। बर्लिनमें रहने वाले सब हिन्दुस्तानियोंको उनके साथ सम्पर्क कायम करने के लिए हिटलर को अत्यन्त पसंद होटल केसरहोफ्स में नेताजी ने जिस चाय पार्टी पर ३ जनवरी १९४२ को निमन्त्रित किया था, उसका मनोरंजक बर्णन इस पुस्तक में दिया जाचुका है। वह रहस्यपूर्ण निमन्त्रण जिसको भी मिला वह चकित रह गया। होटल में पहुंच कर उनका आश्चर्य और भी बढ़ गया, क्योंकि निमंत्रित सज्जनों में सिवाय हिन्दुस्तानियोंके कोई भी और न था। हिज ऐक्सलैंसी ओर्लेण्डो मोजोता का नाम सब के लिए नया ही था। श्री आबिद हसन ने सितोर

मोजोता से सब का परिचय कराया। सिन्योर मोजोता जब भाषण देने खड़े हुए तब उपस्थित हिन्दुस्तानी यह देख कर और भी चकित रह गये कि 'मौलवी' और 'पठान' जियाउद्दीन का भेष धर कर काबुल पहुंचने वाले भारतमाता के महान सुपूत सुभाष बाबू ही 'हिज एक्सलैंसी मोजोता' हैं और इसी नाम से वे जर्मनी आये हैं। अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी में दिये गये डेढ़ घण्टे के भाषण में नेताजी ने उपस्थित लोगों को मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया। सिनेमा के चित्र का-सा एक नाटक उनके सामने हो गया। कई तो आंखें मल कर रह गये और समझ न सके कि वे कोई सपना देख रहे हैं या कोई वास्तविक घटना उनके सामने घट रही है।

दो दिन बाद ५ जनवरी १६४२ को बर्लिन शहर के कूटनीतिक मुहल्ले टिपरगार्टेन के लिखटनस्टीन एली नं० २ में "सेण्ट्राले फ्राइस इण्डीन" (आजाद हिन्द संघ) की आजाद हिन्द सरकार की भूमिका के रूप में नेताजी ने स्थापना कर दी। इसके लिये उन्हें काफी संघर्ष में से गुजरना पड़ा था। सेनिटोरियम से आने के बाद से ही आपने इस सम्बन्ध में जर्मन-सरकार के परराष्ट्र विभाग के साथ बातचीत शुरू कर दी थी। आपका उद्देश्य हिन्दुस्तान के भीतर होने वाली बगावत को बाहर से मदद पहुंचाना था। पर-राष्ट्र विभाग में ऐसे लोग भी कुछ कम न थे, जो सुभाष बाबू के नेतृत्व में ऐसा कोई स्वतन्त्र संगठन बनने नहीं देना चाहते थे। उनकी अंग्रेजों के प्रति गहरी सहानुभूति थी। इसलिए किसी अंग्रेज-विरोधी संगठन का कायम होना उनको पसंद न था। इन्हीं के कारण फ्रांस को जीत लेने के बाद हिटलर को इंग्लिश चैनल पार न करके रूस के विरुद्ध, उसके साथ हुई अनाक्रमण-सन्धि की अवहेलना करके, युद्धमोर्चा लेना पड़ा था, जो कि अन्त में उसके

लिए घातक सिद्ध हुआ। हिटलर के दांये हाथ रुडं.ल्फ हेस का उन्हीं दिनों में उड़ कर इंग्लैण्ड पहुंचना भी अकारण ही न था। ये लोग हिन्दुस्तानी संगठन को परराष्ट्र विभाग के आधीन रखने पर तुले हुए थे। ब्रिटिश-विरोधी लोगों में भी एक दल ऐसा था, जो इंग्लैण्ड को पराजित करने के बाद अपनी ही सेनायें लेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करना चाहता था। जापानियोंके समान इनको भी अपनी अजेय फौजी ताकत पर नाज था। वे नहीं चाहते थे कि हिन्दुस्तान अपने हाथों अपनी आजादी हासिल करके सर्वथा स्वतन्त्र एवं स्वाधीन राष्ट्र बन जाय। इनकी आंखें हिन्दुस्तान पर लगी हुई थीं। वे भी सुभाष बाबू को सर्वथा स्वतन्त्र संगठन बनाने की आजादी देना नहीं चाहते थे। लेकिन, नेताजी इस पर तुले हुए थे कि हिन्दुस्तान की सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करके उनको स्वतन्त्र संगठन बनाने की पूरी आजादी दी जाय और उसका सर्वथा स्वतन्त्र रूप से संचालन हो।

बहुत संघर्ष और लिखापढ़ी के बाद मार्च १९४२ में "सेयट्राले फ्राइज इण्डीन" की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार कराने में नेताजी सफल हुए और आपको स्वतन्त्र देश के राजदूत का सा सम्मान दिया जाने लगा। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए युद्ध करने को आजाद हिन्द संघ की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई। जर्मनों के हस्तक्षेप से सर्वथा रहित उनके संगठन, नियन्त्रण और संचालन का सारा काम हिन्दुस्तानियों के हाथों में रखा गया। बरतानवी साम्राज्यवाद के विरुद्ध मिल कर संयुक्तमोर्चा कायम करने का निश्चय किया गया। 'संघ' को मासिक रूप में नियत आर्थिक सहायता इस आधार पर देनी स्वीकार की गई कि लड़ाई के बाद वह वापिस लौटा दी जायगी। टिपरगार्टन में लिक्टनस्टीन एली नं० २ में एक विशाल और सुन्दर इमारत में 'संघ' के दफ्तर

का काम होने लग गया। यहीं पर अन्य राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों के भी सदर मुकाम थे।

जर्मनों द्वारा पैदा की गई इस कठिनाई को पार करने के बाद युरोप में दूर दूर देशों में फैले हुए हिन्दुस्तानियों को एक सूत्र में पिरोना और उनको युद्ध के मैदान के लिये तय्यार करना भी कोई आसान काम न था। युरोप में रहने वाले अधिकतर हिन्दुस्तानी विद्यार्थी या व्यापारी थे। लड़ाई से वे कोसों दूर थे। गुरु गोविन्दसिंह जी के पांच प्यारों की तरह सुभाष बाबू का शुरू में साथ देने वाले केवल दस ही साथी थे। उनमें हसन, स्वाम, भावेश, गोरा दे, वृजलाल मुकर्जी के नाम मुख्य हैं। इन्ही दस नागरिकों को लेकर 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना करने के अपने महान स्वप्न को नेताजी ने मूर्त रूप दिया था। इनको फौजी या सिपाही ही नहीं, बल्कि फौजी अफसर बनाने की नेताजी की इच्छा थी। इनको साथ लेकर आप बर्लिन से जनवरी १९४२ में लुनिगनबुर्क आये। आरसडेन के पास यहां ही पहिला कैम्प खोला गया था। नेताजी का हृदय गर्व से फूला न समाया और आपकी आखों से खुशी के कुछ आंसू भी बह निकले। दस को यह संख्या कुछ ही महीनों में सैंकड़ों तक पहुंच गई और दो वर्षों में दस हजार से भी ऊपर जा पहुंची।

'आजाद हिन्द संघ' कायम हो जाने के बाद नेताजी की हिटलर से मुलाकात हुई। इस एक घण्टे की मुलाकात में मीन कैम्फ में हिन्दुस्तान के बारे में जो कुछ लिखा गया है, उसकी भी चर्चा हुई। हिटलर ने स्वीकार किया कि वह सब अंग्रेजों को खुश करने के लिये लिखा गया था और नये संस्करण में उसको निकाल दिया जायगा।

सब काम को व्यवस्था के साथ करना नेताजी का स्वभाव-सा बन गया था। 'संघ' के काम की सारी योजना तय्यार करने के लिये एक कमेटी बनाई गई थी। पर-राष्ट्र-नीति, युवक-आन्दोलन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, मजूर गठन, फिल्म व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण, शिक्षा, राष्ट्ररक्षा, औद्योगीकरण, गुप्तचर पुलिस, अर्थ-व्यवस्था आदि पर नेताजी का विशेष ध्यान था। 'संघ' के सभी सदस्यों को इनमें से किसी न किसी विभाग के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन करके निश्चत योजना बनानी पड़ती थी। स्वदेश को आजाद करने के बाद सब प्रकार से उन्नत बनाने पर भी नेताजी की दृष्टि लगी हुई थी। हिन्दुस्तानी, अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा में डाक के टिकट और पासपोर्ट भी छापकर तय्यार कर लिये गये थे। रोमन लिपि को काम में लाने की योजना भी पूरी तौर पर बना ली गई थी। प्रचार, प्रकाशन एवं आन्दोलन पर नेताजी का विशेष ध्यान था। अंग्रेजी, जर्मन और फ्रांसीसी भाषाओं तथा हिन्दुस्तानी भाषाओं में भी 'आजाद हिन्द' पत्र-पत्रिकायें, विज्ञप्तियां तथा बहुत-सा साहित्य इसी प्रयोजन के लिये तय्यार किया गया था। इसकी चर्चा बहुत विस्तार के साथ इस पुस्तक में यथास्थान की गई है। रेडियो से भी पूरा काम लिया गया। ७ जनवरी १९४२ को 'आजाद हिन्द रेडियो' से पहिला ब्राडकास्ट किया गया था और हिलवरसम के पतन से दो दिन पहिले १० अप्रैल १९४५ तक नियम से रोज ब्राडकास्ट किया जाता रहा। कुल ११९० दिन आजाद हिन्द रेडियो ने काम किया। ३० अगस्त १९४२ को इस रेडियो को बर्लिन से हालैंड में हिलवरसम ले जाया गया था। 'आजाद हिन्द संघ' का सदर मुकाम भी यहां आ गया था। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के अन्तिम बादशाह

बहादुरशाह का निम्न शेर नेताजी को बहुत पसन्द था और 'आजाद हिन्द रेडियो' पर इसको रोज पढ़ा जाता था:—

"गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तब तो लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की।,,

"इनकलाब जिन्दाबाद" और "आजाद हिंद जिन्दाबाद" के नारे नेताजी को बहुत पसंद थे। 'जयहिंद' से वे मिलने वालों का स्वागत एवं अभिनंदन किया करते थे। तिरंगा झण्डा उनका राष्ट्रीय झण्डा, विश्व कवि का 'जय हो' गीत उनका राष्ट्रीय गीत और छलांग मारते हुए शेर का चिन्ह उनका बिल्ला था। बाद में महात्मा-गांधी की जय, नेशनल कांग्रेस की जय, भारतमाता की जय, मौलाना अबुल-कलाम आजाद की जय के नारे भी अपना लिये गये थे। नेताजी का त्रिसूत्री मंत्र था—विश्वास, एकता और बलिदान। युरोप से पूर्वीय एशिया जाकर नेताजी ने इन सबका वहां भी इसी प्रकार प्रचार एवं व्यवहार किया था। पूर्वीय एशिया के लिए नेताजी के प्रस्थान करने के बाद आयर्लैंड और अमेरिका के लिए विशेष ब्राडकास्ट किए जाते थे। इनमें यह बताया जाता था कि आजाद हिन्द संघ और फौज दोनों जर्मनों के हाथ की कठपुतली न होकर हिंदुस्तान की आजादी के लिए काम करने वाली स्वतंत्र संस्थायें हैं।

जर्मनी पर मित्रराष्ट्र की फौजों का अधिकार हो जाने पर 'इण्डियन सेक्युरिटी यूनिट' वालों को लंदन से यह आदेश दिया गया था कि जर्मनी में जो भी कोई हिन्दुस्तानी दीख पड़े, उसको तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाय, भले ही आजाद हिन्द संघ या फौज से उसका सम्बन्ध हो या न हो। अगस्त १९४२ में ही संघ तथा फौज का सदर मुकाम

बर्लिन से हालैंड में हिलवरसम आ गया था। बर्लिन में केवल तीन हिन्दुस्तानी मुकुन्दलाल, गुरु श्याम और खुर्शेद मामा रह गये थे। म्युन्सविक में मुलाकात के लिए बुला कर तीनों को नजरबंद कर दिया गया। साबुन, दांत साफ करने के ब्रुश, टावेल आदि के सिवा और कुछ भी सामान साथ नहीं लाने दिया गया था। नौ महीनों तक आप सब इसी प्रकार नजरबन्द रखे गये।

युद्धबन्दी फौजियों या उनके अफसरों के अलावा जो नागरिक जीवन बिताने वाले हिन्दुस्तानी आजाद हिन्द संघ या फौज में भरती हुए थे, उनको इतना अधिक खतरनाक माना गया कि उनमें से अधिकांश को स्वदेश लौटने की अनुमति या सुविधा आज तक नहीं मिली है। उनमें से कुछ को बहुत अधिक मुसीबतें झेलनी पड़ रही हैं। चालीस वर्षों तक स्वदेश के लिए विदेशों की खाक छानने वाले सरदार अजीत-सिंह का जीवन भी संकट में है। युरोप में आजाद हिन्द का झंडा फहराने वाले उन वीर देशभक्तों के जीवन की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, जिनके त्याग, तपस्या और बलिदान ने हमें आज आजादी के दरवाजे पर पहुंचा दिया है। नेताजी जीवित हैं कि नहीं,—यह तो सन्दिग्ध और विवादास्पद है। लेकिन, जो असन्दिग्ध और निर्विवाद रूप से जीवित हैं, उनके जीवन की रक्षा कर उनको स्वदेश लाने में हमें कुछ भी उठा न रखना चाहिये।

जय हिन्द

इन्कलाब जिन्दाबाद

आजाद हिन्द जिन्दाबाद